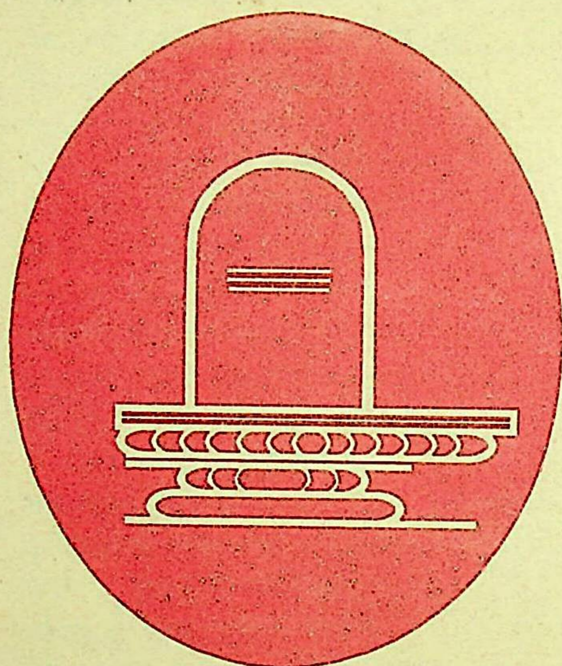
॥ श्रीदक्षिणामूर्तये नमः ॥ ११८१

श्रीशिवाष्टोत्तरशतनामावलिः



व्याख्याकार

अनन्तश्रीविभूषित आचार्य महामण्डलेश्वर

श्री स्वामी महेशानन्द गिरि जी महाराज

उज्जयिनी महाकुम्भपर्व सं. २०४९ के अवसर पर

मेहता चैरिटेबल प्रज्ञालय ट्रस्ट, दिल्ली द्वारा अमूल्य वितरित

ॐ

शिवाष्टोत्तरशतनामावलिः

शिवो महेश्वरः शम्भुः पिनाकी शशिशेखरः।
वामदेवो विरूपाक्षः कपर्दी नीललोहितः॥ १॥

शङ्करः शूलपाणिश्च खट्वाङ्गी विष्णुवल्लभः।
शिपिविष्टोऽम्बिकानाथः श्रीकण्ठो भक्तवत्सलः॥ २॥

भवः शर्वस्त्रिलोकेशः शितिकण्ठः शिवाप्रियः।
उग्रः कपाली कामारिरन्धकासुरसूदनः॥ ३॥

गङ्गाधरो ललाटाक्षः कालकालः कृपानिधिः।
भीमः परशुहस्तश्च मृगपाणिर्जटाधरः॥ ४॥

कैलासवासी कवची कठोरस्त्रिपुरान्तकः।
वृषाङ्को वृषभारूढो भस्मोद्धूलितविग्रहः॥ ५॥

सामप्रियः स्वरमयस्त्रयीमूर्तिरनीश्वरः।
सर्वज्ञः परमात्मा च सोमसूर्याग्निलोचनः॥ ६॥

हविर्यज्ञमयः सोमः पञ्चवक्त्रः सदाशिवः।
विश्वेश्वरो वीरभद्रो गणनाथः प्रजापतिः॥ ७॥

हिरण्यरेता दुर्धर्षो गिरीशो गिरिशोऽनघः।
भुजङ्गभूषणो भर्गो गिरिधन्वा गिरिप्रियः॥ ८॥

कृत्तिवासा पुरारातिर्भगवान् प्रमथाधिपः।
मृत्युञ्जयः सूक्ष्मतनुर्जगद्व्यापी जगद्गुरुः॥ ९॥

व्योमकेशो महासेनजनकश्चारुविक्रमः।
रुद्रो भूतपतिः स्थाणुरहिर्बुध्न्यो दिगम्बरः॥ १०॥

अष्टमूर्तिरनेकात्मा सात्त्विकः शुद्धविग्रहः।
शाश्वतः खण्डपरशुरजः पाशविमोचनः॥ ११॥

मृडः पशुपतिर्देवो महादेवोऽव्ययो हरिः।
पूषदन्तभिदव्यग्रो दक्षाध्वरहरो हरः॥ १२॥

भगनेत्रभिदव्यक्तः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
अपवर्गप्रदोऽनन्तस्तारकः परमेश्वरः॥ १३॥

॥ इति श्रीशिवरहस्ये सप्तमेंऽशे त्रयोदशाध्याये
शिवाष्टोत्तरशतनामावलिः॥

श्रीशिवाष्टोत्तरशतनामावलिः
(हिन्दी व्याख्या)

निर्मले मानसिद्धेपि ह्यधिष्ठाने शिवे, न ये।
पापाः श्रद्धां करिष्यन्ति गन्तारो निरयं हि ते॥

१. शिवः — कल्याणस्वरूप। जो सारे प्रपंच के शान्त होने पर एक परम मंगलमय अधिष्ठान बच जाता है, वही शिव है। **ॐ शिवाय नमः।**

२. महेश्वरः — सारे संसार के नियामकों का भी नियामक तत्त्व। जो सभी शक्तियों का केन्द्र है वही महेश्वर है। **ॐ महेश्वराय नमः।**

३. शंभुः — आनन्दस्वरूप। भोगकाल में विषयरूप धारण करने एवं मोक्ष साधना में एकाग्रवृत्ति का विषय बनने वाला शंभुतत्त्व है। **ॐ शंभवे नमः।**

४. पिनाकी — पिनाक धनुष को धारण करने वाले। प्रणवस्वरूपी धनुष ही पिनाक है। अतः भक्तों के अनुग्रह के लिये नादरूप ॐ बनने वाले पिनाकी हैं। **ॐ पिनाकिने नमः।**

५. शशिशेखरः — चन्द्रमा को सिर पर धारण करने वाले। मन ही चन्द्रमा है। शिव के सर्वोत्तम प्रकाश को मन ही ग्रहण करके जीव को मुक्त बनाता है अतः वह शेखर है। जैसे चन्द्रमा में कालिमा है वैसे ही मन में वासना है। पर प्रकट तो आत्मज्योति को करता ही है। **ॐ शशिशेखराय नमः।**

६. वामदेवः — सुन्दर स्वयंप्रकाश। अन्य सभी परप्रकाश को लेकर ही प्रकाश वाले बनते हैं एवं तेज होने पर सहन नहीं किये जा सकते। यह सुन्दर इसीलिये है कि इसका तेज बढ़ने पर भी अधिकाधिक रमणीय लगता है। **ॐ वामदेवाय नमः।**

७. विरूपाक्षः — असुन्दर आँख वाले। तीन आँखे होने से शिव को ऐसा कहा जाता है। वस्तुतः अक्ष या इन्द्रियाँ विषय को देखती हैं, पर इनकी आँख विषयगत चेतन को ही देख कर मानो विषय को नंगा कर देखती है, अतः वे विरूपाक्ष कहे गये हैं। **ॐ विरूपाक्षाय नमः।**

८. **कपर्दी** — जटाधारी। आकाश रूपी केशों का मेघविन्यास जिससे गंगा रूपी नदियाँ भूतल पर आती हैं। गंगा भूतल में आने के पूर्व आकाश में ही रहती है एवं नटराज मूर्ति में जटा आकाश ही है। **ॐ कपर्दिने नमः।**

९. **नीललोहितः** — नील और लाल रंग के। अग्नि की ज्वाला का ऊर्ध्व भाग लाल एवं अधोभाग काला होता है अतः यह अग्निमूर्ति है। वैसे ही शिव अत्यन्त गौर होकर चेहरे पर लाल लगते हैं एवं काली नीलवर्णा है, अतः वे नील-लोहित हैं। परमार्थतः वृत्ति तम का कार्य होने से नील है पर उसमें स्थित शिव अज्ञाननाशक होने से मानों क्रुद्ध या लाल हैं। **ॐ नीललोहिताय नमः।**

१०. **शंकरः** — कल्याण करने वाले। भोगी को भोग देते हैं एवं योगी को मोक्ष, अतः दोनों का कल्याण करते हैं। **ॐ शंकराय नमः।**

११. **शूलपाणिः** — दुष्टों का विनाश करने के लिये शूल (भाला) धारण करने वाले। मन की वृत्तियाँ ही दुष्ट हैं। अतः मन को अपने स्वरूप से भेदन् करके उसके कारणरूप अविद्या को काटने वाली ब्रह्माकार वृत्ति ही शूल है। एवं वह वृत्ति उनके हाथ में है, उनके अधीन है, अतः वे शूलपाणि हैं। **ॐ शूलपाणये नमः।**

१२. **खट्वाङ्गी**— खाट के पाये वाले। समग्र विश्व जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति एवं तुरीय में धृत है। ये चार पाये मानो उस खाट के हैं जिसमें सभी जगत् रहता है। उसमें से एक तुरीय पाये को अपने रूप में धारण करने वाले शिव हैं। अतः इन्हें खट्वांगी कहा जाता है। **ॐ खट्वाङ्गिने नमः।**

१३. **विष्णुवल्लभः** — विष्णु के परमप्रिय। वैदिक साहित्य में विष्णुतत्त्व उपादानकारण है एवं शक्तितत्त्व निमित्तकारण है। शिव अधिष्ठानकारण है अर्थात् अभिन्ननिमित्तोपादान है। उपादानकारण अधिष्ठान को परम प्रेम करे यह स्वाभाविक है क्योंकि उसका आत्मा है। पुराणों में तो विष्णु को शिवभक्तों में श्रेष्ठ माना ही है क्योंकि उन्होंने अपनी आँख तक शिव जी को चढ़ा दी थी। इतिहास में भी राम ने रामेश्वर की स्थापना की एवं ब्रह्महत्या के पाप से छूटने के लिये केदारनाथ की यात्रा की। कृष्ण ने उपमन्यु से पंचाक्षरी की दीक्षा लेकर दीर्घ साधना की एवं रुक्मिणी आदि के लिये शिवकृपा से ही पुत्र प्राप्त किये। अतः शैवों में ये दोनों ही गुरुवर माने गये हैं।

इस प्रकार तात्त्विक, पौराणिक तथा ऐतिहासिक सभी दृष्टियों से शिव विष्णु के प्रियतम हैं। **ॐ विष्णुवल्लभाय नमः।**

१४. **शिपिविष्टः** — पशुओं में घुसे हुए। सभी जीव अज्ञान पाश से बँधे होने से पशु हैं। उन सभी जीवों में अन्तर्यामी रूप से घुसे बैठे हुए शिव हैं। **ॐ शिपिविष्टाय नमः।**

१५. **अम्बिकानाथः** — जगत् की माता के नाथ। सभी को स्नेह से रखने वाली प्रकृति माता के अधीश्वर होने से वे पुरुषोत्तमं अम्बिकानाथ हैं। उन्हीं के संकेत पर एवं उन्हीं के विलास के लिये प्रकृति का सारा खेल है, अतः वे अम्बिकानाथ हैं। **ॐ अम्बिकानाथाय नमः ।**

१६. **श्रीकण्ठः** — ऐश्वर्य जिनके कण्ठ में है। उनके कण्ठ से भक्तों के लिये निरन्तर भोग के वरों की वर्षा होती रहती है। आज तक किसी भी भक्त को उन्होंने 'नहीं' नहीं कहा। अदेय भी दे दिया। यतियों को वे परम गुप्त वेदान्त का निरन्तर उपदेश देते रहते हैं अतः वह ज्ञान ऐश्वर्य भी उनके कण्ठ में है। **ॐ श्रीकण्ठाय नमः।**

१७. **भक्तवत्सलः** — भक्तों को वात्सल्य दृष्टि से देखने वाले। बच्चे का कल्याण ही सदा चाहा जाता है। वे भक्त का दोष कभी नहीं देखते। अतः उनकी बारात में एकमुखी, द्विमुखी; त्रिमुखी, उदरमुखी, शूलमुखी, एकपाद, त्रिपाद, कबन्धी आदि हम सभी को विरूप दीखने वाले रूप थे। पर वात्सल्य होने से शिव को नहीं खटकते। हमारे दोष को वे दोष नहीं मानते। अतः दोषी पापी को भी भोग-मोक्ष सुलभ कर देते हैं। शिवतत्त्व किस पापी में कम होता देखा गया है? **ॐ भक्तवत्सलाय नमः।**

१८. **भवः** — संसाररूप। सारे जड-चेतन के आकार को शिव ने ही अधिष्ठान रूप से धरा है। **ॐ भवाय नमः।**

१९. **शर्वः** — सारे कष्टों को नष्ट करने वाले होने से शर्व हैं। **ॐ शर्वाय नमः।**

२०. **त्रिलोकेशः** — तीनों लोकों के मालिक। जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति तीनों के आत्मरूप से तुरीय में स्थित होने से वे तुरीय शिव ही मालिक हैं। अथवा पुराणोक्त तीनों लोकों का अखण्डशासकत्व इष्ट है। **ॐ त्रिलोकेशाय नमः ।**

२१. **शितिकण्ठः** — सफेद कण्ठ वाले। विषपान से मध्य बिन्दु के नील हो जाने से शिष्ट कण्ठ की श्वेतता बढ़ गयी है अतः वे श्वेतकण्ठ हैं। परमार्थतः तो वेद में अधिकतर स्थूलों में शुद्ध ब्रह्म का प्रतिपादन करने से वे शितिकण्ठ हैं। **ॐ शितिकण्ठाय नमः।**

२२. **शिवाप्रियः** — कल्याणस्वरूपा पार्वती के प्रिय। शिवा वेद में निमित्तशक्ति हैं। निमित्तशक्ति शिव की प्रीति के लिये ही जगत् का निर्माण करती है, अतः शिव शिवाप्रिय हैं। **ॐ शिवाप्रियाय नमः।**

२३. **उग्रः** — असुरों के नाश के लिये भयंकर रूप व‍ने। भक्तों के हृदय में आसुरी भाव उत्पन्न होते ही शिव उन्हें नष्ट कर देते हैं, अतः उग्र कहे जाते हैं। **ॐ उग्राय नमः।**

२४. **कपाली** — स्वकन्या से रमण में प्रवृत्त ब्रह्म का सिर काट कर उसे खप्पर की तरह प्रयोग करने से शिव कपालवाले कहे जाते हैं। परमार्थतः तो ब्रह्माण्ड के मध्य में खड़े होने से मानों दो कपालों को जोड़ दिया गया हो ऐसी प्रतीति होने से यह ब्रह्माण्ड ही कपाल है, उसके अधिपति होने से वे कपाली हैं। विवेचकों के तो अन्न और अत्ता ही दो कपाल हैं। **ॐ कपालिने नमः।**

२५. **कामारिः**— कामदेव का नाश करने वाले। वैदिक दृष्टि से शिव ही अविद्या का नाश करके तज्जन्य काम का नाश करते हैं क्योंकि ब्रह्माकार वृत्ति में स्थित ब्रह्म ही अविद्यानाशक हैं, न कि वृत्ति। सूर्यकांत में स्थित सूर्य ही दाहक है, न कि मणि। पौराणिकदृष्ट्या कामदेव को जलाने वाले हैं। वस्तुतः तो प्रत्येक कामभाव अविद्याजन्य होने से अशिव है। अतः शिवभाव, समष्टिनिष्ठ होने से, प्रत्येक व्यष्टिनिष्ठ स्वार्थी अशिव कामभाव को नष्ट करता है। **ॐ कामारये नमः।**

२६. **अन्धकासुरसूदनः** — अज्ञानरूपी अन्धकार ही अन्धक है। वह स्वयंप्रकाश महादेव सुर का आवरण करता है अतः असुर है। इसका नाश करने के लिये ही सदाशिव वेद, महावाक्य, गुरु आदि रूपों को धारण करके अन्त में, वृत्तिविशिष्ट बन कर अज्ञान का नाश करते हैं। पौराणिक दृष्ट्या अन्धक राक्षस को शिव ने मारा ही था। वस्तुतः तो प्रत्येक वृत्ति किसी न किसी तूलाज्ञान रूपी अन्धक का नाश ही करती है। अतः वे स्वयंप्रकाश महादेव सदा ही अन्धका-

सुरसूदन हैं। वृत्ति स्वरूपतः जड है अतः वे ही उसे चेतन प्रकाश वाला बनाते हैं, यह सर्व वैदिकों को सम्मत है। ॐ अन्धकासुरसूदनाय नमः।

२७. गंगाधरः — गंगा को धारण करने वाले। वेदों में ज्ञान ही गंगा है क्योंकि वही सबको पवित्र करता है। ज्ञान को सर्वप्रथम धारण करके वेदपरंपरा तथा संन्यासपरम्परा का प्रवर्त्तन करने से शिव गंगाधर हैं। पुराणों में गंगावतरण के समय उसे शिव ने अपनी जटा में धारण किया था। ॐ गंगाधराय नमः।

२८. ललाटाक्षः — ललाट में नेत्र वाले। ललाट चिंतन व चित्त का केन्द्र है। अतः चित्तनेत्र या ज्ञाननेत्र वाले होने से शिव का नाम सार्थक है। शिवमूर्ति में तीसरा नेत्र तो ललाट में है ही। ॐ ललाटाक्षाय नमः।

२९. कालकालः — सभी सृष्टि काल में हैं। शिव सब का ध्वंस करके काल को भी नष्ट करते हैं अतः के कालकाल हैं। जिस शिव की कृपा से ब्रह्मनिष्ठ काल से अतीत होते हैं, वे कालकाल तो हैं ही। पुराणों में श्वेत एवं मार्कण्डेय के लिये शिव ने यमराज को मार डाला था अतः उस प्रकार भी वे कालकाल हैं। प्रत्येक ज्ञान साक्षी में लीन होता है। अतः काल रूप क्षण का, जो ज्ञान से अभिन्न है, प्रतिक्षण ही साक्षी शिव में ग्रास होने से भी वे कालकाल हैं।

'जानामीत्येव यज्ज्ञानं भावानाविश्य वर्त्तते।
ज्ञातं मयेति तत्पश्चाद् विश्राम्यत्यन्तरात्मनि॥'

से भगवान् सुरेश्वराचार्य इसी रूप को बताते हैं। ॐ कालकालाय नमः।

३०. कृपानिधिः — कृपा के खज़ाने। बड़े से बड़े पापों को अपनी कृपा से नष्ट करके वे भक्त का उद्धार करते हैं, अतः वे कृपानिधि हैं। पुराणों में भील, व्याध, भस्मासुर आदि पर उनकी अकारण दया वर्णित है। काशी में मरने वाले प्रत्येक व्यक्ति को मोक्ष का सदावर्त्त बाँटने वाले से अधिक और कौन कृपानिधि हो सकता है? ॐ कृपानिधये नमः।

३१. भीमः — भयंकर। पापियों-दुष्टों को दर्शनमात्र से भय देते हैं। वस्तुतः अनात्मदर्शियों को संसार रूप में दर्शन देना ही भीम रूप है। ॐ भीमाय नमः।

३२. **परशुहस्तः** — असंगता रूपी परशु को हाथ में रखने वाले। अनादि संसारवृक्ष को असंगता से ही काटा जा सकता है। उपासना व कर्म से संसार के भीतर चाहे उत्तम से उत्तम गति या स्थिति पा ली जावे पर उनसे वृक्ष का छेद संभव नहीं। संसार एवं उसके कारण माया का आत्मा से कालत्रय में भी स्पर्श न हुआ, न है और न होगा, ऐसा ज्ञान 'असंगो ह्ययं पुरुषः' आदि वेदवाक्यों से होने पर ही उसकी निवृत्ति वस्तुतः संभव है। अतः शिव परशु को सदा हाथ में रखते हैं कि न जाने किस भक्त के लिये कब इसे चला कर उसका संसारवृक्ष काटना पड़े। **ॐ परशुहस्ताय नमः।**

३३. **मृगपाणिः** — मृग की तरह चंचल मन को अपने हाथ में अर्थात् वश में रखने वाले। अथवा भक्त के मन-मृग को अपने सुन्दर वचन रूपी संगीत से अपने हाथ में करने वाले। शिव मन के अधिपति हैं। अधिदैव दृष्टि से भी रुद्र अहंकार के देवता हैं एवं अहंकार के अधीन ही मन है। **ॐ मृगपाणये नमः।**

३४. **जटाधरः** — जटा धारण करने वाले। जटा तपस्वी अर्थात् वानप्रस्थ का चिह्न है जैसे मुण्डन श्रौत परमहंस का एवं केश गृहस्थ का। तपस्वियों के धारक एवं आदिगुरु होने से वे जटाधर हैं। सभी तपस्याओं के आदि स्रोत शिव ही हैं। देह, मन, बुद्धि आदियों के क्रमशः उपवास-कृच्छ्रचान्द्रायणादि, ध्यान, प्रत्याहार, प्राणायामादि एवं वेदान्त श्रवणमननादि तप हैं। ये सभी शिवप्रोक्त हैं। **ॐ जटाधराय नमः।**

३५. **कैलासवासी** — कैलास पर्वत पर रहने वाले। वेदों में कैलास सहस्रार चक्र में स्थित उठे हुए भाग को कहा गया है अतः वही शिव का निवास है। यद्यपि वे सर्वव्यापक होने से एक देश में नहीं, फिर भी वहीं उनकी स्पष्ट रूप से उपलब्धि होती है। पुराणों में तो सबसे ऊर्ध्व कैलास लोक की स्थिति बतायी गयी है। इतिहास में हिमालय के भाग-विशेष को कैलास माना है। परम एकान्त और पवित्र देश होने से साधकों को वहाँ प्रायः शिव-पार्वती के दर्शन होते हैं यह अनुभवसिद्ध है। वहीं से गंगा, सिन्धु, ब्रहापुत्र आदि नदियों का उदय है। वस्तुतः कैलास का अर्थ सफेद सम्बन्धी है। शुद्धान्तःकरण में शिव की प्राप्ति होने से वे कैलासवासी हैं। **ॐ कैलासवासिने नमः।**

३६. **कवची** — बख्तर पहनने वाले। जिस प्रकार कवच सौन्दर्यवर्धक है, वैसे ही नाम-रूप-कर्म से शिव की अनन्त शक्ति खिल उठती है एवं उसका

सौन्दर्य प्रकट हो जाता है। अतः सोपाधिक ब्रह्म को ही कवची कहा जाता है। ॐ कवचिने नमः।

३७. कठोरः — कठोरता वाले। समग्र ब्रह्माण्ड का भार भी शिव को किंचित् भी नहीं हिला सकता अतः उनकी कठोरता स्पष्ट है। अथवा दुष्टों का दमन एवं महाप्रलय के समय का संहार भी उनकी कठोरता बताता है। अत्यन्त लावण्यमयी पार्वती ने जब शिव को जीतना चाहा तो वे कठोर बनकर एकान्त में चले गये। यह भी उनकी कठोरता का पुराणगत प्रमाण है। भक्त को ज्ञान-निष्ठा देकर अनन्तकाल के लिये उसकी सभी उपाधियों को समाप्त करना भी तो कठोरता ही है। ॐ कठोराय नमः।

३८. त्रिपुरान्तकः — स्थूल, सूक्ष्म व कारण देह रूपी तीनों पुरों का जड़ से नाश करने वाले। पुराणों में त्रिपुरासुर का दहन प्रसिद्ध है, जिसमें शिव ने पृथ्वी को रथ, सूर्य-चन्द्र को पहिये, ब्रह्मा को सारथी, विष्णु को बाण, मेरू को धनुष, वासुकी को डोर आदि बनाकर उसके संहार का नाटक रचा था। समस्त संसार के देवता त्रिपुरदाहार्थ ही हैं, यही वहाँ भी सिद्ध किया है। विचारक तो व्यक्ति, समाज व दैव, ब्रह्माण्डरूप प्रकृति या ईश्वर को ही त्रिपुर मानते हैं। इनमें अत्यन्ताभेद होना ही उनका नाश मानते हैं। ॐ त्रिपुरान्तकाय नमः।

३९. वृषाङ्कः — अपनी ध्वजा पर साँड का चिह्न रखने वाले। सभी सुखों का वर्षण करने वाले धर्मवृष को देखकर ही शिवस्थिति के निश्चय होने से वृषाङ्क हैं। ॐ वृषाङ्काय नमः।

४०. वृषभारूढः — धर्मवृष पर ही शिव चढ़ते हैं अतः वे वृषभारूढ हैं। यहाँ विवेक, वैराग्य, शमादि एवं मुमुक्षुता रूपी पैरों वाला निर्मल अन्तःकरण ही ज्ञान रूपी शिव को धारण करता है। ॐ वृषभारूढाय नमः।

४१. भस्मोद्धूलितविग्रहः — भस्म को सारे शरीर में लगाये हुए। संसार को समाप्त करने से अवशिष्ट जो भस्म वही उनके विग्रह पर रहता है। अथवा सर्व प्रपंच का बाध करने वाली जो वृत्ति, उससे अविद्या के जलने पर भी जो बाधितानुवृत्ति रूपी अविद्यागन्ध है, वही उनका आवरक होने से 'विमुक्तश्च विमुच्यते' इस श्रौत सिद्धान्त से उनके शरीर पर लगा हुआ है। पुराण दृष्टि से तो सती ने जिस अग्नि में शरीर जलाया था, उसकी भस्म को उन्होंने शरीर पर धार-

ण किया था, अतः भस्मोद्धूलितविग्रह हैं। वैसे तो मानवदेह की चिता का भस्म व्यर्थ माना जाता है। अतः किसी के काम न आने वाले पदार्थ को ही अपने शृंगार में काम में लेकर उसका गौरव बढ़ा कर अपना वैराग्य और दयालुता दोनों प्रकट करते हैं। **ॐ भस्मोद्धूलितविग्रहाय नमः।**

४२. **सामप्रियः** — सामवेद के प्रिय। गानात्मक सामवेद में रुद्र की ही स्तुति प्रधान है। अतः मानों वे सामवेद के आराध्य हैं। अथवा सामवेद सुन कर अत्यधिक प्रसन्न होते हैं, अतः सामप्रिय हैं। साम का अर्थ शान्ति भी है। अतः सदा शान्ति के प्रिय हैं। अशान्ति से प्रेम न होने से ही कैलास जैसे एकान्त स्थान में बसते हैं। **ॐ सामप्रियाय नमः।**

४३. **स्वरमयः** — सातों स्वरों में निवास करते हैं अतः स्वरमय हैं। अथवा स्वररूपी अधिष्ठान पर ही व्यंजन आरूढ होते हैं, इसी प्रकार शिव पर नामरूप-कर्म आरूढ हैं। वे स्वरमय हैं अर्थात् अधिष्ठानरूप हैं। समग्र वाणी स्वर का ही विकार है। **ॐ स्वरमयाय नमः।**

४४. **त्रयीमूर्तिः** — वेद ही उनकी मूर्ति है। वेद शिववाणी है। वेद का पूजन, पाठ आदि शिवपूजन ही है। वेद को धारण करने वाला ब्राह्मण भी वेद की जीवित पुस्तक होने से ही तो पूज्य है। लिंग वस्तुतः त्रयी ही है अतः वे त्रयीमूर्ति हैं। **ॐ त्रयीमूर्तये नमः।**

४५. **अनीश्वरः** — किसी को ईश्वर न स्वीकार करने वाले। यदि कोई उनसे बड़ा हो तो उसे वे ईश्वर स्वीकारें। ब्रह्मा और विष्णु तो उन का ज्योतिर्लिंग ही पूरा न देख सके एवं उनका पूजन नित्य करते हैं। इन्द्र, वरुण आदि की तो बात ही क्या? अतः पुराण दृष्टि से वे महेश्वर होने से ही अनीश्वर हैं। इतिहास दृष्टि से जब वे सृष्टि का संहार करेंगे तो अन्त में वे ही बचेंगे। अग्रिम कल्प फिर उनसे ही प्रारम्भ होगा। अतः वे किसी से उत्पन्न नहीं और सबके उत्पादक हैं अतः अनीश्वर हैं। वैदिक दृष्टि से तो अधिष्ठान ही सब का ईश्वर है अतः वे अनीश्वर हैं। सारा प्रपंच अधिष्ठान के अधीन होता है, स्वयं अधिष्ठान किसी के अधीन नहीं। **ॐ अनीश्वराय नमः।**

४६. **सर्वज्ञः** — सब कुछ जानने वाले। निरुपाधिक रूप से ज्ञानस्वरूप होने से वे सर्वाकार में विवर्तित हैं, अतः सर्वज्ञ हैं। सोपाधिक रूप से मायी होकर

सर्व वृत्तियों के साक्षी हैं अतः सर्वज्ञ हैं। सिवाय शिव के और कोई सर्वज्ञ नहीं क्योंकि प्रलयकाल में केवल वे ही रहते हैं। अतः प्रलयकाल का ज्ञान शिव से भिन्न किसी देवता को नहीं हो सकता। **ॐ सर्वज्ञाय नमः।**

४७. **परमात्मा** — सब का आपा। घर, स्त्री, पुत्र आदि भी आत्मा हैं। देह, मन आदि भी आत्मा हैं। पर ये सब जिस चेतन से सम्बन्धी होने पर आत्मा कहे जाते हैं, वही परमात्मा शिव है। **ॐ परमात्मने नमः।**

४८. **सोमसूर्याग्निलोचनः** — चन्द्रमा, सूर्य और अग्नि रूप तीन आँखों वाले। वस्तुतः इडा, पिङ्गला व सुषुम्णा रूपी तीनों नाडियों से प्रकाश देकर भोग, सद्गति एवं अगति का प्रकाश करने से वे सोमसूर्याग्निलोचन हैं। वैसे सोम भक्ति, सूर्य ज्ञान एवं अग्नि कर्म का भी प्रतीक हैं, अतः वे इन तीनों से प्रकाश देते हैं अतः सोमसूर्याग्निलोचन हैं। **ॐ सोमसूर्याग्निलोचनाय नमः।**

४९. **हविः** — आहुति के द्रव्य रूप। शिव ही हवि बनकर भक्त के हृदय की कामना पूर्ण करते हैं। वेदसिद्धान्त से तो प्रत्येक इन्द्रिय में प्रतिक्षण रूपरसादि की हवि पड़ती है अतः वे सर्वरूप धारण करके जो अपने आपको सर्वसाक्षी होने पर भी दृश्य रूप में अनुभव कराते हैं, यही उनका हवि रूप बनना है। **ॐ हविषे नमः।**

५०. **यज्ञमयः** — यज्ञरूप हैं। सभी यज्ञ वस्तुतः शिवरूप ही हैं। वे ही एकमात्र सर्व यज्ञों के अधिष्ठाता व फलदाता हैं। इस तत्त्व को नहीं समझ कर और भिन्न-भिन्न देवता या कर्म फल देते हैं ऐसा मानकर कर्मकाण्डी भ्रान्त होते हैं। दक्ष ने इसी भूल से अपना सर्वस्व नाश कर दिया। भिन्न-भिन्न यज्ञ अनेक प्रकार की रुचि के साधकों को शिव-प्रसन्नता प्राप्त करने के भिन्न-भिन्न साधन हैं। अतः उनमें से किसी साधन के द्वारा शिव को प्रसन्न करना ही उद्देश्य है। **ॐ यज्ञमयाय नमः।**

५१. **सोमः** — ऋग्वेद का नवम मंडल सारा ही सोम की स्तुति का है। उमा सहित शिव ही सोम हैं। उसी को प्राप्त करने का उत्तम साधन सोमयाग है, जिसका साधन होने से एक वल्ली भी सोम कही जाती है। सहस्रार में कुण्डलिनी के प्रवेश को भी सोम कहते हैं। यहाँ भी शिव-शक्ति संयोग है। चन्द्रमा भी सोम है जो शिव की अष्टमूर्तियों में एक है। वस्तुतः शक्ति एवं शिव की नित्य

एकता का रूप होने से परमाह्लादक ही सोम है। अतः वेदों में इसका प्राधान्य है। **ॐ सोमाय नमः।**

५२. **पञ्चवक्त्रः** — पाँच मुख वाले। पाँच ज्ञानेन्द्रियों से पाँच विषय खाने वाला शिव है अतः पंच मुख वाला है। सद्योजात, तत्पुरुष, अघोर, ईशान, वामदेव ही ये मुख्र हैं। वेद में उनका विस्तृत वर्णनं है एवं हृदय के ये पंचछिद्र कहे गये हैं। पाँच विषयों की सृष्टि करने से भी पंचवक्त्र हैं। **ॐ पञ्चवक्त्राय नमः।**

५३. **सदाशिवः** — नित्य कल्याणस्वरूप। सभी पदार्थ कभी-न-कभी किसी-न-किसी का कल्याण करते हैं एवं आनन्द देते हैं, अतः प्रिय भी होते हैं। पर आत्मस्वरूप नित्य प्रिय एवं कल्याणरूप है, अतः आत्मा सदा शिव है। अतः आनन्द उनकी नित्य कला है। **ॐ सदाशिवाय नमः।**

५४. **विश्वेश्वरः** — समग्र चराचर के श्रेष्ठ शासक। शिव ही सब के ईश्वर होने से ईश्वर शब्द का संस्कृत में अर्थ ही शिव होता है। अथवा जगत् के अभिमानी विश्व जो जीव उनका पदार्थभोग आदि में नियमतः शासन करने से वे विश्वेश्वर हैं। स्वप्न में तो सृष्टि करने में जीव स्वतन्त्र है, जाग्रत् में नहीं। पुराणं दृष्टि से तो काशी में विश्वेश्वर लिंग ही है। **ॐ विश्वेश्वराय नमः।**

५५. **वीरभद्रः** — बहादुर, पर कल्याण करने वाले एवं सौम्यरूप वाले। प्रायः जो वीर होते हैं वे अविचारशील होने से कल्याण का विचार नहीं करते एवं भयंकर वेषभूषा आदि से युक्त होते हैं। शंकर में वीरता होने पर भी भद्रता है। ब्रह्माकारवृत्ति से सर्व प्रपंच को नष्ट करने से वे ही सब से बड़े वीर हैं, यह निर्विवाद है। पर इस नाश में कल्याण ही भरा है, यह सभी मानेंगे। पुराण दृष्टि से तो कर्मनिष्ठ दक्ष को दण्ड देने के लिये शिव ने वीरभद्र को उत्पन्न किया था। अतः वहाँ भी जड कर्मवादी को नष्ट कर के उसे शिवभक्त बनाकर भद्र ही किया। **ॐ वीरभद्राय नमः।**

५६. **गणनाथः** — गणों के नाथने वाले। कर्मेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रिय, अन्तःकरण, महाभूत, प्राण, कर्म, काम, अविद्या इन आठों गणों को जीव से नाथने वाले होने से वेदों में शिव को गणनाथ कहा है। पुराणों में अपने सेवक गणों का शासन करने के लिये गणेश को उत्पन्न करने से वे भी गणनाथ कहे गये हैं। वस्तुतः जो वीर सब गणों अर्थात् समूहों को नाथ सकता है, वही उन सब में समन्वय

कर सकता है । शिव तत्त्व ही देह, समाज व ब्रह्माण्ड में समन्वय करने के कारण गणनाथ है । ॐ गणनाथाय नमः ।

५७. **प्रजापतिः** — प्रजाओं का पालन करने वाले । प्रजा वही है जो अपने से उत्पन्न हो । सारी सृष्टि शिव ही की प्रजा है । वे भी भोग, मोक्ष, दण्ड, व्यवस्था आदि से उसका पालन करने से प्रजापति हैं । अथवा ब्रह्मा को भी प्रजापति कहते हैं । अतः ब्रह्मा की मूर्ति धारण करने से वे प्रजापति हैं । ॐ प्रजापतये नमः ।

५८. **हिरण्यरेता** — हित व रमणीय वीर्य वाले । वीर्य से उत्पत्ति होती है । शिव हितकारी व रमणीय सृष्टि, वेद, ज्ञान को उत्पन्न करते हैं अतः हिरण्यरेता हैं । वे कभी न अहित करते हैं और न असुन्दर करते हैं । इसीलिये सृष्टि इतनी सुन्दर है । शिवभक्त जहाँ भी होगा इन दोनों को बढ़ायेगा । अतः वे हिरण्यरेता हैं । ॐ हिरण्यरेतसे नमः ।

५९. **दुर्धर्षः** —किसी के द्वारा न दबने वाले । जिनसे उत्पन्न वीरभद्र ने दक्षयज्ञ में विष्णु को मार गिराया एवं जिन्होंने ब्रह्मा का सिर नखों से नोच लिया, उन्हें कौन दबाये ? वैसे ज्ञान को दबाना या नष्ट करना असम्भव ही है । अतः ज्ञानस्वरूप शिव दुर्धर्ष हैं ही । शिवभक्त भी इसीलिये कभी किसी से नहीं दब सकता । परिस्थितियों से दबने वाला कभी शैव नहीं होता । ॐ दुर्धर्षाय नमः ।

६०. **गिरीशः** — कैलास पर्वत के मालिक । यहाँ अधिदैव आदि पाँचों भेदों वाला कैलास समझना चाहिये । अध्यात्म में तो सहस्रार के ईश्वर ही से तात्पर्य है । भावुक भक्त तो गिरि नामा दशनाम परमहंसों के उपास्य इष्ट होने से उन्हें गिरीश कहते हैं । ॐ गिरीशाय नमः ।

६१. **गिरिशः** — कैलास पर्वत पर सोने वाले । ज्ञान के पूर्व सहस्रार में शिव सोते ही हैं । ॐ गिरिशाय नमः ।

६२. **अनघः** — पापरहित । जिनके ओझल होने से ही अविद्या सभी पापों की जननी बनती है एवं जिनसे नज़र मिलने मात्र से सारे पाप नष्ट होते हैं, वे परम पवित्र किस प्रकार पाप सम्बन्धी हो सकते हैं ? ॐ अनघाय नमः ।

६३. **भुजङ्गभूषणः** — साँप के गहने वाले । अत्यन्त चंचल होने से सर्प को मन का प्रतीक माना है । ऐसा भी उनका भूषण बन जाता है तो सभी को उद्धार की आशा है, यह भाव प्रकट होता है । ॐ भुजङ्गभूषणाय नमः ।

६४. **भर्गः** — पापों को भूँजने वाले। भूँजी हुई चीज आगे फलती नहीं। इसी प्रकार ज्ञान से दग्ध पाप-पुण्य फल देने में असमर्थ होते हैं। शिव इसीलिये गायत्री के उपास्य रूप से भी भर्ग कहे गये हैं। गायत्री का मन से जप करते हुए जो शिव को अपनी बुद्धि देते हैं, उनके पापों को वे भूँज डालते हैं। **ॐ भर्गाय नमः।**

६५. **गिरिधन्वा** — मेरु को धनुष बनाने वाले। मानव देह में रीढ़ की हड्डी को मेरुदण्ड कहा जाता है। एवं यही धनुष है जिसे त्रिपुरदाह के लिये काम में लिया जाता है। इसी में से कुण्डलिनी को ऊपर ले जाया जाता है। पुराणों में तो यह प्रसिद्ध ही है। **ॐ गिरिधन्वने नमः।**

६६. **गिरिप्रियः** — पर्वत को प्रिय। मेरुदण्ड और सहस्रार को जब सोम प्राप्ति होती है तब वे शान्ति और आनन्द से भर जाते हैं अतः शिव उन्हें प्रिय हैं। अथवा ज्ञानस्वरूप शिव इन्हीं स्नायुकेन्द्रों से आदान-विसर्ग करते हैं। अतः वे केन्द्र उन्हें प्रिय-हैं। पुराणों के अनुसार तो शिव को पर्वतप्रदेश हमेशा ही प्रिय लगते हैं। तन्त्रों में तो एकान्त एवं शान्त और जल, वायु की शुद्धि से गिरि ध्यान आदि के उत्तम केन्द्र होने से शिव के प्रिय हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से आज तक पर्वत प्रदेश ही प्रधान रूप से शैव है। शिव भक्त भी गिरि-प्रिय होते हैं। आकाश के अधिष्ठाता होने से भी शिव गिरिप्रिय हों यह स्वाभाविक है। **ॐ गिरिप्रियाय नमः।**

६७. **कृत्तिवासा** — गज चर्म को धारण करने वाले। पुराणों में गजासुर को मारकर शिव ने उसके चर्म को धारण किया यह प्रसिद्ध है। गज को कामी माना गया है। अत्यन्त बलिष्ठ होकर भी हथिनी को देखकर यह विवेकभ्रष्ट होकर पकड़ा जाता है। जिस काम को मार डाला गया वह काम नहीं, कामाभास रह गया। वंही बाह्य वस्त्र है। अर्थात् कार्य में कामवत् प्रतीत होने पर भी कामाभास है। इसीलिये शंकर कृत्तिवासा हैं। गजचर्म की व्यर्थता से भी ऐसा वस्त्र-धारण वैराग्य का द्योतक है। असुर को भी प्रेमदान किया यह भाव तो है ही। ज्ञानी ईश्वर में सभी आभासवत् रहते हैं, यही सत्य है। **ॐ कृत्तिवाससे नमः।**

६८. **पुरारातिः** — पुर का नाश करने वाले। प्रलय या ज्ञान काल में ब्रह्माण्ड-पुर या मायापुर के नाशक बनने से शिव पुरारातिहैं। **ॐ पुरारातये नमः।**

६९. **भगवान्** — ऐश्वर्य, धर्म, यश, लक्ष्मी, ज्ञान, वैराग्य के समूह को भग कहते हैं। इनको अपने में धारण करने से वे भगवान् हैं। अथवा उत्पत्ति, प्रलय, प्राणियों के पूर्वजन्म एवं भावी जन्म, विद्या और अविद्या को एक साथ जानने से वे भगवान् हैं। **ॐ भगवते नमः।**

७०. **प्रमथाधिपः** — प्रमथों के अधिपति। प्रमथ देवताओं के गण हैं जो रुद्र के अधीन बताये गये हैं। वस्तुतः ये साध्यों के अन्तर्भूत हैं। प्रमथ का अर्थ अच्छी प्रकार से मथना है। ध्यान ही मथना है। अतः ध्यानियों के इष्ट एवं मालिक तथा पालक होने से वे प्रमथाधिप हैं। 'स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्' से पतंजलि ने उन्हें ध्यानयोग का आदिगुरु भी माना ही है। **ॐ प्रमथाधिपाय नमः।**

७१. **मृत्युञ्जयः** — मृत्यु को जीतने वाले। अज्ञान को ही मृत्यु कहा जाता है। वे कभी भी अज्ञान के अधीन नहीं होते, अतः मृत्युंजय हैं। प्रमाद को भी मृत्यु माना गया है। वे अप्रमादी हैं, अतः ऐसा कहा गया है। भक्तों को मृत्यु से पार कर देते हैं, अतः मृत्युंजय हैं। वेद में मृत्युंजय मन्त्र में यही प्रार्थना है — 'हे शिव आपकी पूजा से हम अज्ञान प्रमाद आदि रूप मृत्यु से ऐसे ही छूट जावें, जैसे पकी लौकी पेड़ से'। पुराणों में तो मृत्यु यानी यम को मारने से वे मृत्युंजय कहे गये हैं। परमार्थतः नाम-रूप-कर्म को वेदों में मृत्यु कहा गया है। अधिष्ठान शिव कभी भी इन अध्यस्तों के अधीन नहीं वरन् अपने ज्ञान से इनको जीत लेता है, अतः मृत्युंजय है। तन्त्रशास्त्र में तो अपने प्राणों को रुद्र मानने से प्राण का प्राणवियोग असम्भव है। इतिहास में शिवशक्ति की पूजा ही प्राचीनतम काल से आज तक विश्वभर में अनवच्छिन्न रूप से मिली है, अतः वे ही मृत्युंजय हैं। मोहन्जोदड़ो हरप्पा के ध्वंसावशेषों में सिवाय पशुपति एवं पार्वती के और किसी की भी मूर्ति नहीं मिली है। अन्य सभी देवता उनसे परवर्ती हैं। **ॐ मृत्युञ्जयाय नमः।**

७२. **सूक्ष्मतनुः** — सूक्ष्म शरीर रूप। रुद्रों को बृहदारण्यक उपनिषद् में लिंग-शरीर से अभिन्न बताया है अतः वे समष्टि सूक्ष्मदेह हैं। विसतन्तुसदृश कुण्डलिनी में उपलब्ध होने से भी वे सूक्ष्मतनु हैं। हृदय में सूक्ष्म छिद्र रूपी उपाधि में उनका ध्यान प्रतिपादित होने से भी वे सूक्ष्मतनु हैं। तन्त्रों में तो तनु

का अर्थ भी सूक्ष्म होने से वे सूक्ष्म से भी सूक्ष्म होने से सूक्ष्मतनु कहे गये हैं। योग में प्रणव की सूक्ष्मावस्था परा में उनकी अभिव्यक्ति होने से वे सूक्ष्मतनु हैं। देह को सूक्ष्म करने पर ही उनकी उपलब्धि होती है। **ॐ सूक्ष्मतनवे नमः।**

७३. **जगद्व्यापी** — संसार में व्याप्त होकर रहने वाले। पूर्व नाम से इसमें विरोधाभास है। वस्तुतः कारण सूक्ष्म भी होता है और व्यापक भी। पृथ्वी की अपेक्षा जल सूक्ष्म भी है और व्यापक भी। इसी प्रकार तेज, वायु और आकाश भी हैं। आकाश का भी कारण होने से महेश्वर सारे जगत् की अपेक्षा व्यापक है और सूक्ष्म भी है। वेद में तो अधिष्ठान रूप होने से भी वह व्यापक है एवं विष्णुरूप से उपादान होने से भी। दर्शन की दृष्टि से तो सत्तारूप से वह सारे जगत् में व्याप्त है। **ॐ जगद्व्यापिने नमः।**

७४ **जगद्गुरूः** — जगत् के गुरु। वेदों में 'ईशानः सर्वविद्यानाम्' कह कर शिव का स्मरण होने से वे ही सारे ज्ञानों के मूलस्रोत माने गये हैं। तंत्र सभी शिवशक्तिप्रोक्त ही हैं। साहित्य, शृङ्गार, संगीत, नाट्य, व्याकरण, दर्शन आदि के सभी आचार्यों ने शंकर को ही गुरु माना है। अतः शिव ही एकमात्र जगद्गुरू हैं। **ॐ जगद्गुरवे नमः।**

७५. **व्योमकेशः** — आकाश रूपी केश वाले। लिंगमूर्ति के केश आकाश ही होते हैं, यह स्पष्ट है। ब्रह्माण्ड का सबसे बाहर का आवरण आकाश ही है अतः विश्वरूपी शिव के केश आकाश ही संभव हैं। इसीलिये पुराणों में भी शिव के केशों में आकाशगंगा को बताया है। केश सौन्दर्यवर्धक हैं। आकाश से ही सृष्टि का प्रारम्भ होकर मानों शिव का सौन्दर्य है। इसी शक्ति-विकास या नामरूपकर्मात्मक सौन्दर्य का त्याग करने से सभी परमहंस केशों को कटा कर मुण्ड रहते हैं। दूसरों के लिये तो मुण्ड होना अत्यन्त शोक का विषय या दण्ड ही माना गया है। **ॐ व्योमकेशाय नमः।**

७६. **महासेनजनकः** — कार्तिकेय के पिता। देवसेना जब तारकासुर के आक्रमण से परास्त हो गयी, तब शिव ने पार्वती को निमित्त बनाकर देवसेनाओं के अधिपति रूप से कार्तिकेय को उत्पन्न किया। अतः वे ही महासेनानी माने गये हैं। वेदों में तो अनन्त आसुरी वृत्तियों का नाश करने के अनेक उपाय ही महासेना हैं। उनका उपदेश देने से वे महासेनजनक हैं। उन सभी के सेनानी रूप

से आत्मज्ञान का उपदेश देकर उसे ब्रह्माकार वृत्ति में प्रतिफलित वे शिव ही करते हैं। अतः महासेन के जनक भी वे ही हैं। महासेनजनकाय नमः।

७७. **चारुविक्रमः** — सुन्दर विक्रम वाले। उनका क्रम सृष्टि में, ज्ञान में सर्वत्र सुन्दर है। क्रम का अर्थ चाल भी है। शिव की चाल इतनी सुन्दर है कि मानो नृत्य कर रहे हैं। शत्रुओं को जीतने में भी उनमें अविक्षेप या श्रमाभाव रहने से ऐसा लगता है कि मानों अभिनय कर रहे हैं। ध्यान, योगादि भी अज्ञान-जय के मार्ग में विक्रम ही है। उसमें भी उनका लावण्य निखरता है। शिवभक्त भी इसीलिये सुन्दरतापूर्वक ही सारे कार्य करते हैं। ॐ चारुविक्रमाय नमः।

७८. **रुद्रः** — ज्ञान को बहाने वाले या दुःख को नष्ट करने वाले। वेदों में रुद्र और सोम नाम का अत्यधिक प्रयोग है। कहीं तो भक्तों के दुःख से स्वयं रो पड़ने से भी वे रुद्र करुणामूर्ति माने गये हैं। अथवा जीवरूप से रोने से भी वे रुद्र हैं। प्राणरूप होने से अपने वियोग से रुलाने वाले होने से भी वे रुद्र हैं। ॐ रुद्राय नमः।

७९. **भूतपतिः** — भूतों के मालिक तथा पालक। आकाशादि भूतों के भी वे पति हैं एवं जीवरूपी भूतों के भी। भूत का अर्थ जो बीत चुका, वे कर्म और संस्कार भी है। उनके फलदाता और उद्बोधक रूप में परम स्वतंत्र होने से भी वे भूतपति हैं। जो सदा पहले से हो, वह भी सदा भूत है, अतः अविद्या भी भूत कही गयी है। उसके अधीश्वर अर्थात् नियामक भी हैं एवं सामान्यरूप से उसके पोषक भी हैं। अज्ञान भी तो ज्ञानाधीन ही है। ब्रह्मवृत्ति में उसके नाशक भी वे शिव ही हैं। अतः भूतपति हैं। पुराणों में तो मृतात्माओं या पितरों के ईश्वर होने से भूतपति हैं। लोक में तो भूतों के पति भूतों से निरन्तर घिरे रहने के कारण माने गये हैं। ॐ भूतपतये नमः।

८०. **स्थाणुः** — अविकारी। अथर्ववेद में विस्तृत विचार स्थाणुसूक्त में है। सूखे वृक्ष को स्थाणु कहते हैं। संसार वृक्ष के सूख जाने पर जो अवशिष्ट बचता है, वही स्थाणु है। 'नेति नेति' से स्थूल, सूक्ष्म व कारण का बाध करने पर, बाध का साक्षी जो बच जाता है, वही स्थाणु है। वेद में निरधिष्ठान भ्रम नहीं माना है, इसे स्थाणु से कहा गया है। ॐ स्थाणवे नमः।

८१. **अहिर्बुध्न्यः** — सर्प मूल वाले। कुण्डलिनी सर्प ही शिव का मूल स्थान है क्योंकि वहीं से साधना प्रारंभ होती है। 'भूमिबुध्न्य' से छान्दोग्योपनिषद् भी यही बताती है। अथवा बुध्न्य में न-कारादि छान्दस हैं, अतः सर्पात्मक कुण्डलिनी के द्वारा ही सहस्रारस्थ शिव को जाना जाता है, अतः वे अहिर्बुध्न्य हैं। **ॐ अहिर्बुध्न्याय नमः।**

८२. **दिगम्बरः** — आकाश रूपी वस्त्र वाले। जो आकाश की तरह समग्र विश्व में व्यापक बनेगा वही ज्ञान प्राप्त कर सकेगा, यह श्वेताश्वतरोपनिषद् का कथन है। महादेव तो महाज्ञानी हैं। आकाश के अतिरिक्त उनकी और कोई उपाधि नहीं, अतः आकाश उनका ही प्रतीक है। आकाश की तरह मायामेघ के जगद्वर्षण से वे निर्लिप्त रहते हैं यह भी भाव है। **ॐ दिगम्बराय नमः।**

८३. **अष्टमूर्तिः** — भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, चन्द्र, सूर्य और आत्मा रूपी आठ विग्रह धारण करने वाले। सर्वरूप होने पर भी ध्यान की सुविधार्थ यह परिगणन है। परा प्रकृति और अपरा प्रकृति दोनों उनकी ही शक्ति है। शक्ति ही शिव की मूर्ति होती है और शिव ही शक्ति का आत्मा होता है। **ॐ अष्टमूर्तये नमः।**

८४. **अनेकात्मा** — अनेक रूप धारण करने वाले। सारा विश्व शिव का रूप ही है क्योंकि 'एकोऽहं बहु स्याम्' उनका ही संकल्प है। अतः वे एक होते हुए भी अनेक की तरह प्रतीत होते हैं। घटज्ञान, पटज्ञान, मठज्ञान आदि अनन्तरूप को एक ज्ञानरूपी शिव ही तो धारते हैं। मिट्टी या सोने की तरह यह अनन्तरूपता बोद्धव्य है। पूर्व नाम में संकीर्णता की प्रतीति को यह नाम निवृत्त करता है। अथवा परमात्मा, अन्तरात्मा, देहात्मा, गौणात्मा, मिथ्यात्मा, साक्ष्यात्मा, जीवात्मा आदि अनेक रूपों से वे अनेकात्मा हैं। **ॐ अनेकात्मने नमः।**

८५. **सात्त्विकः** —सत्त्व से पूर्ण। सत्त्व का अर्थ अन्तःकरण होता है। अतः अन्तःकरण में ही उनका चित्, आनन्द आदि रूप प्रकट होने से वे सात्त्विक हैं। अथवा सत्त्व माने सत्ता। सत्ता रूप से ही वे सर्वत्र चराचर में पूर्ण हैं, अतः सात्त्विक कहे गये हैं। 'अस्तीत्येवोलब्धव्यम्' श्रुति इसमें प्रमाण है। सांख्य प्रक्रिया से तो सत्त्वगुण ही उनका स्वभाव होने से वे सात्त्विक हैं। सत्त्वगुण वाले साधक को ही वे मिलते हैं, अतः सात्त्विक हैं, ऐसा हैरण्यगर्भों का मत

है। पुराण दृष्टि से उनका श्वेतवर्ण एवं ज्ञान और वैराग्य तथा समाधि उनकी सात्त्विकता का स्पष्ट प्रमाण है। वैसे वे तमोगुण के अधिष्ठाता भी माने गये हैं। तमोगुण का नियामक तो सत्त्वगुण ही हो सकता है यह सभी मानते हैं। जैसे तमोगुण से सत्त्वगुण दबाया जाता है तो सत्त्वगुण के अधिष्ठाता रूप को विष्णु कहते हैं। काले रंग, बराबर सोते रहना आदि से वे अपनी तमोगुणता स्पष्ट करते हैं। रजोगुण का नियंत्रण रजोगुण ही कर सकता है अतः रजोगुण के अधिष्ठाता ब्रह्मा स्वयं रजोगुणी हैं, और लालरंग, सदा सृष्टि करना आदि से स्पष्ट करते हैं। अतः सत्त्वगुण वाले होने से यहाँ शिव को सात्त्विक कहा गया है। शुद्ध को लोक में सात्त्विक कहा जाता है। वे स्मरण मात्र से सबको शुद्ध करते हैं, अतः सात्त्विक हैं ही। **ॐ सात्त्विकाय नमः।**

८६. **शुद्धविग्रहः** — शुद्ध मूर्ति वाले। वे स्वरूप से तो ज्ञान होने से शुद्ध हैं ही, यह पूर्व में कहा, यहाँ तो उनकी मूर्ति भी शुद्ध है यह कहा गया। ब्रह्माकारवृत्ति शिव की उत्कृष्ट मूर्ति है, जो अविद्या को नष्ट करके सब पापों का नाश करती है। सारी वृत्तियाँ ही ज्ञान को प्रकट करने से शुद्ध हैं। वे सभी शिव के विग्रह हैं। शिव का कभी भी किसी भी रूप में गर्भवास, मरण, दुःख, जरा, व्याधि आदि नहीं होता, जैसे अन्य देवताओं का अवतार आदि में होता है, अतः वे ही शुद्ध विग्रह हैं, यह आगमों में स्पष्ट है। उनकी लिंगमूर्ति सदा शुद्ध रहती है। लिंग ही वस्तुतः शिव की मूर्ति है। अष्ट मूर्तियाँ भी नित्य शुद्ध हैं। अतः वे शुद्धविग्रह हैं। **ॐ शुद्धविग्रहाय नमः।**

८७. **शाश्वतः** — नित्य। प्रलय करने के बाद तो वे अकेले ही बचते हैं। सृष्टिकाल में भी वे तो वैसे ही बने रहते हैं, अतः उनकी शाश्वतता स्पष्ट है। **ॐ शाश्वताय नमः।**

८८. **खण्डपरशुः** — टूटे फरसे वाले। असंगता का ज्ञान रूपी परशु संसार रूपी वृक्ष को अविद्या मूल सहित काटकर स्वयं भी कट जाता है। ब्रह्माकारवृत्ति अविद्या का नाश कर स्वयं ही नष्ट हो जाती है, यह शैवों का सिद्धान्त है। अतः परमेश्वर खण्डपरशु हैं। वह परशु दीखता है पर काटने का काम करने में असमर्थ है। ज्ञानी में ब्रह्माकारवृत्ति बाधितानुवृत्ति काल में प्रतीत होती है, पर वस्तुतः ज्ञान तो प्रथम वृत्ति में हो चुकने से अब ज्ञान को उत्पन्न नहीं

कर सकती। महामहिम सुरेश्वर स्पष्ट ही ज्ञानसंतति से कोई नयी प्राप्ति नहीं होती इसका प्रतिपादन करते हैं। शैवसिद्धान्त प्रसंख्यान का विरोधी है कि वृत्ति को हमेशा चलाते रहने से ज्ञान में कोई विशेषता आ जाती है। यदि प्रथम वृत्ति ज्ञान को काटने में असमर्थ है तो उसका दुहराया जाना एवं उससे उत्पन्न चरमवृत्ति भी असमर्थ ही रहेगी। अतः परशु दीखने पर भी कार्यकारी न होने से खण्डपरशु है। **ॐ खण्डपरशवे नमः।**

८९. **अजः** — जन्मरहित रहते हुए किसी को जन्म न देने वाले। **ॐ अजाय नमः।**

९०. **पाशविमोचनः** — रज आदि पाश से छुड़ाने वाले। रज अर्थात् रागद्वेषादि, यही पाश है जिससे आत्मा बँधकर पशुभाव वाला अर्थात् जीव दीख रहा है। शिव इससे भक्त को छुड़ा देते हैं, उसके मूलकारण द्वैतभाव को नष्ट करके। जहाँ द्वैत होगा वहीं रागद्वेष होंगे। स्वयं अपने से न राग होता और न द्वेष। अतः ज्ञान देने से वे ऐसे कहे गये हैं। सांख्यमत से वे रजोगुण से सत्त्वगुण में ले जाकर छुड़ा देते हैं, अतः पाशविमोचन हैं। रज मैल को भी कहते हैं। अतः आणव, मायिक और कार्मिक तीनों मलों से छुड़ाकर निष्कल भाव को प्राप्त कराते हैं, यह भाव आगमिकों का है। पापों से छुड़ाते हैं यह तो लौकिक भाव प्रसिद्ध है। शिव की करुणा तो इतनी प्रसिद्ध है कि कारुणिक मत वाले शैव प्रसिद्ध हैं। पुराणों में भी शिव को सर्वाधिक दयालु बताया गया है। असुर, नाग, राक्षस भी उनकी दया प्राप्त कर लेते हैं। काशी में वे जीवमात्र को सभी पाशों से छुड़ाकर मुक्त कर देते हैं। अतः पाशविमोचन हैं। **ॐ पाशविमोचनाय नमः।**

९१. **मृडः** — सुखरूप हैं। प्रपंचोपशम होने से वे आनन्दरूप हैं। विषयानन्द में भी शिव का ही सोपाधिक स्फुरण है। अपने भक्तों को वे वैराग्य होने पर निरुपाधिक सुख, तथा रागी होने पर विषयरूपी उपाधि से सुख देते हैं। **ॐ मृडाय नमः।**

९२. **पशुपतिः** — जीव रूपी पशुओं के मालिक व पालक। शंकर के लिये दोपाये, चौपाये, छैपायों में कोई फर्क नहीं। भाव है कि वेदों में मनुष्य को कर्माधिकारी बताया, अतः पापपुण्य का इसी योनि में फल बताया, अन्यत्र भोग-

योनियाँ बताई। इसमें कारण मनुष्य में बुद्धितत्त्व का विकास है। स्मृतियों में शूद्रों को भी पशुवत् ही माना, क्योंकि उनमें बुद्धितत्त्व का विकास देखने में नहीं आया। पुराणों में आर्यावर्त से अन्य क्षेत्र कर्मभूमि नहीं मानी क्योंकि वहाँ भी बुद्धितत्त्व का विकास नहीं मिलता। अतः मनुष्य का दो पाद वाला जन्तु-विशेष ऐसा लक्षण शास्त्रों में स्वीकृत नहीं है यह स्पष्ट है। बुद्धि का विकास ही लक्षण है। जहाँ बुद्धि का विकास नहीं, वहाँ धर्म या कर्म का अनधिकार ही मानना होगा। अतः वहाँ भोगयोनि होने से धर्माधर्म नहीं मान सकते। शंकर को तो सर्वत्र बुद्धि का विकास नहीं लगने से वे सभी को पशु की तरह धर्म या कर्म का अधिकारी ही नहीं मानते। यदि बुद्धि विकास होता तो धर्म में ही प्रवृत्ति क्यों नहीं करता, यह उनका भाव है। पिता को ५० वर्ष का लाखों रुपये कमाने वाला पुत्र भी छोटा पाँच वर्ष का निर्बुद्धि लगता है यह अनुभवसिद्ध है। अतः सदा शुद्ध कर्म करने वाले ही मनुष्य हैं, ऐसा शिव को लगता है। ब्रह्माकारवृत्ति में नित्य रमण करना ही वह कर्म है। ऐसा निमेषार्ध भी ब्रह्मज्ञानरहित अवस्था में न रहने वाला तो शिवस्वरूप होने से शिव है। अतः शिव के लिये बड़े से बड़े ऋषि, देव भी बालक होने से पशु हैं। प्रश्न हो सकता है कि फिर किसी को भी कर्म का फल नहीं मिलना चाहिये। उत्तर यह है कि वे तो देना नहीं चाहते पर जीव जबर्दस्ती स्वयं को कर्माधिकारी मानकर कर्ता मानता है, एवं फलाधिकारी मानकर भोक्ता मानता है। जैसे पुत्र बड़ा होने पर पिता को बालक लगने पर भी अपना अधिकार जबर्दस्ती से माँग कर सुख दुःख भोगता है। कर्तव्य-भोक्तृत्व भाव को छोड़कर अपने को बालक की तरह रखे तो शिव कभी भी कर्मफल न दें। वस्तुतः इन भावों को छोड़ने पर पहिले किये हुए कर्मों को भी क्षमा कर देते हैं, यह वेदसिद्धान्त है। बालक में 'मैं पिता से भिन्नता रखता हूँ,' यह भाव ही अधिकारता का आपादन करता है, वैसे ही शिव से भिन्न अपनी स्वतन्त्र सत्ता मानना रूपी द्वैतधी ही कर्तृत्व लाती है। पशु को भी शिवज्ञान का अधिकार तो है ही, अतः शैव सभी पशु रूपी जीवों को एक जैसा अधिकारी मानते हैं। विवेक-वैराग्यादिसम्पन्न हो तो ज्ञान करे, नहीं तो शिव में भक्ति करे यह सामान्य साधना प्राणिमात्र का रक्षण व पालन करने में समर्थ है। शिवभक्ति ज्ञान का अधिकार प्राप्त करायेगी ऐसा निश्चय है। वस्तुतः वेदाधिकारी वर्णाश्रमाभिमानी यदि शैव होता है तो वह उन सभी कर्मों का शिव की आज्ञाकारिता रूपी भक्ति

की दृष्टि से ही अनुष्ठान करता है, अपने को कर्माधिकारी मानकर या बुद्धि वाला मानकर नहीं। एवं वेदानधिकारी होता है तो भी कर्माधिकारिता प्राप्त करने की उसे कोई इच्छा न होने से वह न तो जन्मान्तर में ही ब्राह्मणादि बनने की इच्छा करता है, और न इस जन्म में ही शिवाज्ञा का विरोध करके अनधिकारचेष्टा करता है। वह आगमों में प्रोक्त शिवाज्ञा पालन रूपी भक्ति करता है। कुछ न जानने पर वह सभी प्राणियों में स्थित शिव को प्रसन्न करने का प्रयत्न करके शिवभक्ति को करता है। विवेक-वैराग्यदि से सम्पन्न होकर वह ब्रह्माकारवृत्ति से अपना सर्वस्व समर्पण रूपी भक्ति करता है। इस प्रकार शैव धर्म अत्यन्त व्यापक, प्राणिमात्र को उपादेय, सारे भेदभावों से रहित विश्व के चराचर अनन्त ब्रह्माण्डों के सभी पशुओं के लिये एक जैसा है, यह भाव पशुपति से प्रकट है। जो अपने को कर्ता-भोक्ता मानने पर तुले हों, एवं अपनी बुद्धि से अपने को बड़ा मानने के कारण पशुभाव को स्वीकार न कर सकें, वे इसके अधिकारी नहीं। पशु जैसे अपने सभी भोजनादि को अपने पालक से पाता है, वैसे ही शैव अपनी सभी आवश्यकताओं को शिव से पाता है। जैसे भूख-प्यास लगने पर पशु अपने मालिक के सामने चिल्लाता है वैसे ही यहाँ सभी कुछ शिव से माँगा जाता है। एवं वे परम करुणामूर्ति सभी कुछ दे देते हैं, यह अनुभवसिद्ध है। पशुपति जो हैं। **ॐ पशुपतये नमः।**

९३. देवः — सूर्यचन्द्रादि रूप से जड प्रकाशक हैं एवं जीवरूप से चेतन प्रकाशक हैं। अथवा प्रत्येक ज्ञान ही प्रकाशक होने से देव है। घटज्ञान, पटज्ञान आदि ही घटदेव पटदेव हैं। इसी से वैदिक अनन्त देव स्वीकारता है जो वस्तुतः एक देव (ज्ञान) के ही अनन्त रूप हैं। रुद्र, ईश्वरी, विष्णु आदि देवों के रूप में होने से वे देव हैं, ऐसा उपासकमत है। **ॐ देवाय नमः।**

९४. महादेवः — सभी प्रकाशकों के अन्तिम प्रकाशक होने से वे महादेव हैं। घट का प्रकाशक सूर्य, सूर्य का प्रकाशक नेत्र, नेत्र का मन, मन का बुद्धि, बुद्धि का साक्षी एवं साक्षी का प्रकाशक महादेव है। अथवा ब्रह्माकारवृत्ति ही महादेव है। क्योंकि वहीं एक ज्ञान से सर्वविज्ञान होता है। उपासक-दृष्टि से तो विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र आदि के भी शासक व उत्पादक होने से वे महादेव हैं, यह पुराण, आगम व स्मृतियों से सिद्ध है। उनकी महादेवता को न मानने से ही दक्षयज्ञ नष्ट हुआ, एवं ब्रह्मा का विष्णु से अपनी महत्ता के लिये झगड़ा हुआ। **ॐ महादेवाय नमः।**

९५. **अव्ययः** — कभी खर्च या कम न होने वाले । अनन्तकाल से अनन्त ब्रह्माण्डों में अनन्तरूप धारण करने पर भी वे वैसे ही बने रहते हैं । ज्ञान घटादि रूपों में जन्मभर बनते रहने पर क्या वृद्धावस्था में कम होता है ? अतः वे अव्यय हैं । व्याकरण में भी सब लिंग, विभक्ति, वचनों के प्रत्यय लगने पर एवं उनका भान होने पर भी जो एकसा बना रहता है वह अव्यय कहलाता है । वैसे ही शिव भी सभी उपाधियों के प्रत्यय (प्रतीति) लगने पर भी अखण्ड एकरस बने रहते हैं । **ॐ अव्ययाय नमः** ।

९६. **हरिः** — हरि रूप । विष्णु शिव की उपादानशक्ति है । पिता का वीर्य ही पुत्र का उपादानकारण है, अतः पुत्र के सभी अवयवों का घनीभवन ही कारण रूप में स्थित है । वैसे ही हरि सारे जीवों व जगत् का घनीभूत कारण रूप है । उपनिषदों में इसीलिये नारायण को शिववीर्य कहा है । गीताभाष्य के प्रारम्भ में सर्वज्ञ भगवत्पाद शंकर पुराणों के प्रमाण से सिद्ध करते हैं कि नारायण से अव्यक्त, अव्यक्त से ब्रह्माण्ड एवं वहाँ सभी जीव-जगत् के देह उत्पन्न होते हैं । अतः हरि सर्वकारण है । वीर्य वस्तुतः प्रजोत्पत्ति की कामना से ही अभिन्न देह में से अलग होता हुआ प्रतीत होता है, वैसे ही बहुभवन की शिवेच्छा से ही अखण्डनिमित्तोपादान कारण में से उपादान कारण रूप अलग होते हुए प्रतीत होते हैं । यहाँ इच्छा ही निमित्त कारण है, अतः इच्छास्वरूपिणी शिवा को ही निमित्त कारण माना है । इच्छा सदा अभिन्न होती है अतः शिव-शिवा का सदा अभेद है । व्यक्त होना ही मानो उसका कारण बनना है । वस्तुतस्तु उपादान व अधिष्ठान सदा ही अभिन्न होते हैं अतः शिवारूप निमित्तशक्ति व उपादान विष्णु से नित्य अभिन्न होने से ही वे अधिष्ठान में अभिन्ननिमित्तोपादान कारण हैं । जो हरे वह हरि है, अतः सारे जगत् को अपने में पुनः आहरण करने से वे हरि कहे गये हैं । उपादान कारण में ही लय होना सर्ववादिसम्मत है । अथवा जो हरा जाये वही हरि है । निमित्तकारण कुम्हार मिट्टी का आहरण करता है । इसी प्रकार शिव की इच्छाशक्ति नारायण का सृष्टि के लिये आहरण करती है, अतः वे हरि कहे गये हैं । पुराणों में बलि का आहरण करने से उन्हें हरि माना है । इतिहास में सिंह का रूप धारण करने से वे हरि कहे जाते है, क्योंकि सिंह को हरि कहा जाता है । आगमों में तो ह्रीं मंत्र के सम्बन्ध से हरि शब्द है । **ॐ हरये नमः** ।

९७. **पूषदन्तभित्** — पूषा के दाँतों को तोड़ने वाले । दक्षयज्ञ में वीरभद्र ने पूषा के दाँतों को तोड़ा था यह पुराणों में प्रसिद्ध है । पूषा सूर्य को भी कहते हैं । अतः

बादल या त्रसरेणुओं से सूर्य की उष्णता को नष्ट करके मानों सूर्य के दाँतों को तोड़ते हैं। ज्योतिषशास्त्र के अनुसार सूर्य के पुष्य में आते ही वर्षा का प्रारंभ होत है। यह काल श्रावण मास का प्रारंभप्राय होता है। उस समय मेघों की प्रधानता होने से सूर्य की गर्मी कम हो जाती है। श्रावण मास इसीलिये मानो पूषदन्तभित् होने से ही शिव का मास स्वीकृत है। वेदों में तो पूषा का अर्थ पोषण करने वाला है। अतः जगत् का पोषण करने वाली माया ही पूषा है। उसका काटने वाला दाँत कामना है अथवा द्वैतभाव है। शिव सोपाधिक उपासना के द्वारा कामना तथा कर्म, एवं निरुपाधिक ज्ञान से द्वैतभाव की निवृत्ति करने से पूषदन्तभित् हैं। उपनिषद् शिव की मूर्ति है एवं वे श्रवण मात्र से जगत् की सत्यत्वधी को नष्ट करती है, मनन से ब्रह्मलोक तक पहुँचाती है एवं निदिध्यासन से जीवन्मुक्ति देती है, यह सब को अनुभवसिद्ध है। अतः संसरणा करने वाले द्वैतभाव या जीवभाव का पोषण न करने से ही वे पूषदन्त-भेत्ता हैं। **ॐ पूषदन्तभिदे नमः।**

९८. **अव्यग्रः** — अपनी इच्छा के विरुद्ध कुछ होने की संभावना से ही व्यग्रता आती है। शिव की इच्छा से प्रत्येक घटना होने से उनकी व्यग्रता संभव ही नहीं। जीवरूप से भी उनकी ही इच्छा कार्य करती है अतः जीव के व्यवहारों से भी वे व्यग्र नहीं होते। इसीलिये राक्षसादि के नाश में भी उनकी स्वप्रवृति नहीं होती यह पुराणों से प्रतिपादित है। श्रुति की दृष्टि से तो जब वे ही सर्वाकार होते हुए सर्वहीन बने रहते हैं तो व्यग्रता कैसे संभव है। सर्प से रज्जु क्या घबराती है ? अतः वे अव्यग्र हैं। **ॐ अव्यग्राय नमः।**

९९. **दक्षाध्वरहरः** — दक्ष के यज्ञ को नष्ट करने वाले। पुराणों में बताया है कि दक्ष ने प्रार्थना करके अम्बा को अपनी पुत्रीरूप से जब प्राप्त किया था तभी यह कह दिया गया था कि कभी भी शिव का अपमान ससुर के गर्व से नहीं करेंगे। दक्ष जब यह भूल गया तो अम्बा ने सतीदेह का परित्याग कर दिया। तब दक्ष के यज्ञ का नाश किया गया। वस्तुतः कर्मवादी ही अपने को अत्यन्त चतुर समझने के कारण दक्ष — अभिमानी — होते हैं। उनके किये हुए कर्म-काण्ड शिव की प्रसन्नता की जगह अभिमानवर्धक होकर नाश के कारण बनते हैं अतः वे दक्षाध्वरहर हैं। **ॐ दक्षाध्वरहराय नमः।**

१००. **हरः** — सभी ताप-पापों को हरण करके अन्त में मन को भी हरण करके अविद्या को भी हर लेते हैं अतः वे हर हैं। प्रसिद्ध है कि अन्यत्र

प्रयुक्त हर शब्द भी शिव को इतना प्रिय होता है कि वे उसका फल दे देते हैं। ॐ हराय नमः।

१०१. **भगनेत्रभित्**— भग के नेत्र को फोड़ने वाले। पुराणों में लिखा है कि दक्षयज्ञ के समय वीरभद्र के गणों ने भग देवता का नेत्र नष्ट किया था। वैसे भग का अर्थ होता है जो दो भागों में बँटा हो। अतः दृश्य और द्रष्टा आदि द्वैत भावमें बँटा हुआ दर्शन आदि ही भग है। भग को चलाने वाला अज्ञान ही नेत्र है। उसको नष्ट करने से शंकर भगनेत्रभित् हैं। पूषदन्त में कष्ट का भाव प्रधान है और भगनेत्र में द्वैत का भाव प्रधान है अतः अपुनरुक्ति है। इस दृष्टि से ऐश्वर्यादि छः भग या उत्पत्ति आदि छः का ज्ञान हो तो भी ये सभी अज्ञान द्वारा ही चलते हैं अतः उन सभी का नाशक शिव है। देहस्थ त्रिकोणात्मक मूलादिबन्धत्रय हकार रूप काली के नेत्र का भेद करके शिवशक्तिसामरस्य की प्राप्ति का गुरुगम्य रहस्य ही आगमों में प्रतिपादित भगनेत्रभेद है। **ॐ भगनेत्रभिदे नमः।**

१०२. **अव्यक्तः**— इन्द्रिय मन आदि से उनका अपरोक्ष नहीं हो सकता, अतः वे अव्यक्त हैं। सारा संसार बीज रूप से उनकी इच्छा में रहने से भी वे अव्यक्त हैं। **ॐ अव्यक्ताय नमः।**

१०३. **सहस्राक्षः**— अनन्त आँखों वाले। सृष्टि के प्राणिमात्र की आँखें ईश्वर की ही हैं। अथवा अनन्त प्रकार के अक्ष यानी प्रत्यक्ष ही सहस्राक्ष है। अनन्त ज्ञान रूप से तात्पर्य है। **ॐ सहस्राक्षाय नमः।**

१०४. **सहस्रपात्**— अनन्त पैरों वाले। सृष्टि के सभी पैर उनके ही हैं। अथवा सभी कर्मेन्द्रियाँ उनकी हैं। अनन्त कर्म वाले से तात्पर्य है। शिव की अनन्त क्रियाशक्ति ही सर्वत्र क्रिया रूप में प्रकट है। **ॐ सहस्रपदे नमः।**

१०५. **अपवर्गप्रदः**— मोक्ष देने वाले। शिव ही ज्ञान द्वारा मोक्ष देते हैं। **ॐ अपवर्गप्रदाय नमः।**

१०६. **अनन्तः**— देश, काल, वस्तु रूपी तीनों परिच्छेदों से रहित होने से शिव अनन्त हैं। **ॐ अनन्ताय नमः।**

१०७. **तारकः**— जाबालोपनिषद में संसार समुद्र से काशी क्षेत्र में सभी को तारने से शिव को तारक माना है। अथवा प्रणव मन्त्र भी तारक मन्त्र है,

उसका उपदेश देने से वे भी प्रणवार्थ रूप तारक हैं। तारकेश्वर महादेव प्रसिद्ध हैं। ॐ तारकाय नमः।

१०८. परमेश्वरः — सबसे परे ईश्वर। उनसे बड़ा या भिन्न कोई ईश्वर नहीं होने से वे परमेश्वर कहे जाते हैं। ॐ परमेश्वराय नमः।

शिव का नादात्मक अव्यक्त गुप्त नाम है जो केवल गुरुगम्य है।



असतो मा सद्गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्माऽमृतं गमय।
(बृहदारण्यकोपनिषद् काण्वशाखा)

हे महेश्वर ! मुझे अत्यन्त अधोगति देने वाली स्वाभाविक कर्म और मन की गति से छुड़ाकर शास्त्रीय कर्म और मन की गति अर्थात् उपासना की ओर ले जाओ। इससे मुझमें देवभाव की प्राप्ति की योग्यता आयेगी। मुझे शिव को ढाँकने वाले अज्ञानरूप अंधकार से छुड़ाकर ज्ञानरूपी महादेवस्वरूप को प्राप्त कराओ। महादेवस्वरूप अज्ञान का नाश करेगा। मृत्यु अर्थात् मृत्यु के कारण प्रमाद, अन्नदोष आदि से छुड़ाकर अमृत अर्थात् अमरता के कारणभूत श्रद्धा, भक्ति की प्राप्ति कराओ।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

अधिदैव, अधिभूत और अध्यात्म त्रिविध तापों की शान्ति हो।

भास्करराय कृत नामव्याख्या

१. शिवः — मलरहित होने से, कल्याणगुणों वाले होने से, प्रपंच के आधार होने से, आपका भजन करन वालों को अमृत देने वाले होने से, और इच्छाशक्ति के आश्रय होने से आप स्वभाव से ही शिव हैं। तथा 'भद्रकर्णह्रद' नामक स्थान पर स्थापित लिंग में आप 'शिवेश्वर' नाम से जाने जाते हैं, इसलिये भी आप शिव हैं।

२. महेश्वरः — आपकी ईश्वरता तीनों लोकों से न्यारी है, आप महान् शासकों के भी नियामक हैं, आप संसार को समाप्त करने वाले हैं। आप श्रुतियों द्वारा बताये गये हैं, आप चन्द्रशेखरादि पच्चीसों रूप होने पर भी उनसे परे हैं, अतः आप महेश्वर हैं।

३. शम्भुः — हे देव ! आप सुख उत्पन्न करते हैं व स्वयं सुख पाते हैं, आप सुखरूप व सद्रूप हैं, देवदारु के जंगल में विराजमान लिंग में आप शम्भु नाम से प्रसिद्ध हैं, इन कारणों से आप शम्भु हैं।

४. पिनाकी — हे नाथ ! कण्वमुनि की मूर्धा पर बनी बाँबी में उत्पन्न बाँस से बने तीन धनुषों में प्रथम जिस धनुष द्वारा स्वर्ग भी आच्छादित कर दिया गया, जो (धनुष) सात फणों वाले साँप के आकार का और जगत् के हित के लिये कार्य करता है, उसे आप धारण करते हैं, इसलिये पिनाकी हैं।

५. शशिशेखरः — 'ज्ञानरूप व सब जीवों का समष्टि-आत्मक होता हुआ भी शीतलरश्मि यह चन्द्र व्यर्थ ही मेरे द्वारा दण्डित किया गया'— इस विचार से दया के कारण आपके द्वारा यह सिर पर धारण किया गया है जिससे आप शशिशेखर हैं।

६. वामदेवः — आप अपने शक्तिरूप वामार्ध से जगज्जन्मादि क्रीडा करते हैं, जिससे आपका परमस्वरूप सर्जकता से अस्पृष्ट ही रहता है, आप तीनों लोकों से उल्टे ही आचार वाले हैं जिससे सारे संसार से विलक्षण हैं। आप अति सुन्दर ढंग से आनन्दित हैं। इन हेतुओं से आप वामदेव कहे जाते हैं।

७. विरूपाक्षः — हे हर ! आपकी आँखे विषम और विविध शक्तियों वाली हैं, आपकी इंद्रियाँ विलक्षण हैं, हेमकूट पहाड़ पर स्थित लिङ्ग में आप विरूपाक्ष नाम से प्रसिद्ध भी हैं। अतः आप विरूपाक्ष हैं।

८. **कपर्दी** — देवनदी के प्रवाह से शोधित होने के कारण, सुरसरिता का शोधन करने के कारण और पृथ्वी पर बहने के लिये गंगाप्रवाह प्रदान करने के कारण विशिष्ट तरह गुँथे बाल कपर्द हैं, या अतिशय गुण कपर्द कहाते हैं, अथवा रस्सी को कपर्द कहते हैं। आप इस प्रकार के कपर्दों के आधार होते हुए गंगाप्रवाह का स्थगित होना और पवित्र होना संभव करते हैं, उसे प्रकट करने की अपनी सामर्थ्य स्पष्ट करते हैं, मैरालशरीर धारण करते हैं और छागलाण्ड में इस नाम से प्रसिध्द हैं, अतः कपर्दी हैं।

९. **नीललोहितः** — हे शिव ! आपका शरीर ऐसा है जिसका आधा स्त्री है, वह शरीर प्रकृति-पुरुषात्मक है और आदित्यमण्डल में ध्येयतया दो रूपों वाला है। ब्रह्मा के ललाट से उत्पन्न लाल व सफेद स्वेदबिन्दु से आपने जन्म लिया। अतः आप नीललोहित हैं।

१०. **शङ्करः** — हे शंकर ! आप सुख को हाथ में ही धारण करते हैं और भक्तों के लिये सुख कर देते हैं। चन्द्रपुर नामक पीठ में शंकरेश्वर नाम से आप प्रसिद्ध हैं, अतः शंकर हैं।

११. **शूलपाणिः** — हे शिव ! तृप्तपुर के लिंग में प्रकट हुए आप शूलपाणि कहे जाते हैं तथा गुण, आत्मा, काल, लोक, अग्नि, शक्ति, दशा आदि त्रिकों से परिकल्पित त्रिशूल को धारण किये हुए आप शूलपाणि कहाते हैं।

१२. **खट्वाङ्गी** — लिंगोद्भवलीला में ब्रह्मा का झूठ बोलना देखकर तुरन्त उनका एक सिर काट लिया पर उससे ब्रह्मा मरे नहीं तो भगवान् को हिंसाजन्य पाप कहाँ से होता? फिर भी आप दण्डे का आधा टुकड़ा लिये हैं, वह लोगों को शिक्षा देने के लिये है कि प्रायश्चित्त एवं करना चाहिये। या जो आपके हाथ में खाट का पाया है वह शुद्ध सत्त्व है। खट्वाङ्ग — दण्डे का आधा टुकड़ा या खाट का पाया — वाले होने से आप खट्वाङ्गी हैं।

१३. **विष्णुवल्लभः** — तपस्या करते हुए विष्णु को किरणरेखाओं से उत्पन्न सुदर्शनचक्र देते हुए तथा आपके प्रिय विष्णु को आप अपना आधा शरीर भी देते हुए संसार में विष्णुवल्लभ नाम से प्रसिद्ध हुए हैं।

१४. **शिपिविष्टः** — हे व्यापक परमेश्वर ! परमात्मविषयक ज्ञान न होने से दो पैरों वाले होते हुए भी सुर-नर आदि सब जीवरूप पशु—शिपि—हैं। उन

पर अनुग्रह करने वाले आप उनके हृदय में प्रवेश करते हैं जिससे 'शिपिविष्ट' यों कहे जाते हैं।

१५. **अम्बिकानाथः** — आप हिमाचल से अम्बिका की याचना करते हैं, मन से अम्बिका की इच्छा करते हैं, उसके पति हैं और देविकातीर्थस्थ लिंग में अम्बिकानाथेश्वर नाम से प्रतिष्ठित हैं, अतः अम्बिकानाथ हैं।

१६. **श्रीकण्ठः** — विष, गंगा, चन्द्रलेखा तथा कण्ठ में विषजन्य कान्ति को धारण करने से और माण्डल्येश नामक क्षेत्रविशेष में श्रीकण्ठेश्वर नाम से प्रख्यात होने से आप श्रीकण्ठ हैं।

१७. **भक्तवत्सलः** — आप दासों को छाती से लगा लेते हैं, भक्त रूप बच्चों को अपना लेते हैं। भात और बालक दोनों का ग्रहण करते हैं, जिससे बालक को खिलाकर पोषण करें, भक्तों पर अतिशय प्रेम रखते हैं, अतः भक्तवत्सल हैं।

१८. **भवः** — आप केवल सत्तारूप हैं, प्रपंच के अधिष्ठान तथा उपादान हैं, जलतत्त्व की अधिष्ठात्री आपकी भवमूर्ति है, अतः आप भव हैं।

१९. **शर्वः** — 'शर्वाय क्षितिमूर्तये नमः' आदि पूजाकल्प में भूम्यधिष्ठातृतया शर्व प्रसिद्ध हैं।

२०. **त्रिलोकेशः** — हे शंकर! देवताओं, असुरों व मानवों के समूहों से घटित ऊर्ध्वभुवन, अधोभुवन और मध्यभुवन के अन्तर्यामी होने से तथा त्रिपुटी के साक्षी होने से आप त्रिलोकेश हैं।

२१. **शितिकण्ठः** — इन्द्र के वज्र के प्रहार से हुई कालिमा को गले में धारण करने से और कालंजरपर्वत के शिखर पर इस रूप में प्रसिद्ध होने से आप शितिकण्ठ हैं।

२२. **शिवाप्रियः** — आपके बुद्धि, धैर्य, यत्न, सामर्थ्य, शरीर, इन्द्रिय, मन (आदि) सब शिवा रूप ही हैं अतः आप शिवाप्रिय हैं।

२३. **उग्रः** — आप सब लोगों में व्याप्त हैं, संसार से अतीत हैं, कनखल क्षेत्र में उग्रेश्वर नाम से लिंग में प्रतिष्ठित हैं, और इस नाम से वायुतत्व के अधिष्ठाता हैं अतः उग्र हैं।

२४. **कपाली** — हे परमशिव ! ब्रह्मा के कपाल-समूह से बनी माला धारण करने के कारण आप कंकालनाथ होते हुए भी ब्रह्मा से अधिक बलशाली प्रमित होते हैं। करवीरक्षेत्र में स्थित लिंग में आप कपालीश्वर नाम से प्रतिष्ठित हैं। सुरों द्वारा वन्दनीय आप नाम से कपाली हैं।

२५. **कामारिः** — हे कर्पूरगौर ! काम्य विषयों को चाहने वालों से आप दूर रहते हैं, कामनारहित लोगों के लिये अति निकट हैं। कामदेव के दर्प को आपने नष्ट किया। इन कारणों से आप संसार में कामारि नाम से प्रसिद्ध हैं।

२६. **अन्धकासुरसूदनः** — जगदम्बा द्वारा खेल में आपके नेत्रों के बन्द करने से हुए अन्धकार के कारण ही जो अन्धकासुर उत्पन्न हुआ वह तो भैरव द्वारा मार दिया गया। वैसा नीच होने पर भी आपके द्वारा कृपा कर वह उत्तम गणनेता-पद पर पहुँचा दिया गया। यों (अन्धक जैसों पर भी) प्रेमवाले होते हुए भी आप नाम से अन्धकासुरसूदन हैं।

२७. **गङ्गाधरः** — हे परमशिव ! देवनदी अपने बल का विचार कर गर्व से अतितीव्रगामिनी होती हुई आकाश से आपके सिर पर बहुत जोर से गिरी पर खूब फैली आपकी जटारूप वन में वह प्रविष्ट हुई और फिर (जब तक आपने चाहा नहीं तब तक) कहीं दीखी ही नहीं। क्योंकि आप उसे धारण करते हैं इसलिए गंगाधर कहे जाते हैं।

२८. **ललाटाक्षः** — हे भव ! नक्षत्र, चन्द्र, सूर्य (आदि) को नष्ट करने वाली जो प्रलयकालिक वह्नि है उसे आप अन्य दो नेत्रों से ऊपर धारण करते हैं अतः ललाटाक्ष हैं।

२९. **कालकालः** — हे उमानाथ ! मार्कण्डेय आपके द्वारा काल के मुख से छुड़ा दिया गया, प्रसिद्ध कालाग्निरुद्र आपके द्वारा नष्ट कर दिया गया, आप काल-रूप चौथी मूर्ति को धारण करते हैं अतः संसार में 'कालकाल' नाम से प्रसिद्ध हैं।

३०. **कृपानिधिः** — आपके अपने भक्तों का अपकार करने वाले दैत्य-वंशी जलन्धर आदि को भी सालोक्यादि मोक्षपद आप देना चाहते हैं अतः कृपा-निधि नाम से प्रसिद्ध हैं।

३१. **भीमः** — हे हिमाचलपुत्री के पति ! आपके भय से वायु बहती रहती है, अग्नि और सूर्य आपके भय से अपने कार्य में संलग्न रहते हैं, इन्द्र,

यम, वरुण आदि देवता आपसे होने वाले भय के कारण सशंक हृदय वाले हुए अपने-अपने काम में तत्पर रहते हैं, आकाश की अधिष्ठात्री आपकी अतिव्यापक मूर्ति भीम वाली है तथा सप्तगोदावर तीर्थ में स्थित लिंग मे आप इसी नाम से प्रतिष्ठित हैं अतः आप भीम हैं।

३२. **परशुहस्तः**,— हे शिव ! शैवागम-वचनों से पता चलता है कि आपका परशु अपनी अमोघ चरितता व्यक्त करता है अतः अमोघचरित वाले होने से आप परशुहस्त हैं।

३३. **मृगपाणिः** — दारुकवन में स्थित और आपका अनिष्ट करने की कोशिश करने वाले ऋषियों द्वारा भेजा वेदरूप मृग और भिक्षामुद्रा आपके हाथ में हैं अतः आप मृगपाणि कहे जाते हैं।

३४. **जटाधरः** — जो आप पूर्वकाल में दक्षनाश के अवसर पर दो प्रकार के शरीर वाले हुए और एक शरीर से आपने मृगरूप यज्ञ का पीछा किया व दूसरे से यज्ञमण्डप में सबको शिक्षित (दण्डित) करने के लिए स्थित हुए, वे आप जटाधर नाम से सुने जाते हैं। किंच केशत्वरूपता को प्राप्त सारी नदियों को, सब समुद्रों को और अत्यधिक पावन पर्वतों को आप सिर पर धारण करते हैं। इस लिये भी आप जटाधर नाम से सुने जाते हैं।

३५. **कैलासवासी** — वैकुण्ठ से उपर, मेरुपर्वत पर, हिमाचल पर और मन्दराचल पर जो आपकी क्रीडाभूमियाँ आपकी सेवा करने से प्राप्त होती हैं उनमे से प्रत्येक क्रीडाभूमि में स्थित होने के कारण आप कैलासवासी हैं।

३६. **कवची** —बख्तर न होने पर सभी लोग अन्यों के बाणों से स्पृश्य व अन्यों के नेत्रों के दृश्य बनते हैं किन्तु आपका स्वरूप ही दुर्लभ होने से आप अन्य किसी सहायता के बिना अन्यों के बाणों व नेत्रों को अपने से सम्बन्धित नहीं होने देते अतः कवची— कवचधारी हो जाते हैं।

३७. **कठोरः** — आपकी एक मूर्ति घोर व दूसरी अघोर है, उन दोनों को धारण किये हुए आप जगत् के रक्षक हैं। दुष्ट जीव नियन्त्रण से ही रक्षणीय हैं। यों घोर रूप होने से अथवा परिपूर्ण होने से आप कठोर कहे गये हैं।

३८. **त्रिपुरान्तकः** — हे नाथ ! स्थूल, सूक्ष्म और कारण जो तीन शरीर होते हैं, वे आपसे पराङ्मुख पामरों के ही होते हैं, क्योंकि यदि वे भक्तों के होते हैं, तो आप तत्काल ही उन्हें समाप्त कर देते हैं। अतः आप त्रिपुरान्तक हैं। अ-थवा अलौकिक लीला से त्रिपुर का दाह करने वाले होने से आप त्रिपुरान्तक हैं। या फिर श्रीशैल में इस नाम से प्रसिद्ध मूर्ति वाले होने से आप त्रिपुरान्तक हैं।

३९. **वृषाङ्कः** — हे भगवान् ! गायों के अनीतिपूर्ण व्यवहार से कुपित हुए भी आप धर्मरूप वृष द्वारा प्रार्थित हुए थे अतः आप उससे चिह्नित ध्वजा वाले रथ पर चलते हैं और वृषशैलक्षेत्र में इस नाम से प्रसिद्ध हैं इसलिये वृषांक हैं।

४०. **वृषभारूढः** — क्योंकि आप नन्दी पर चढ़ते हैं इसलिये देवसमूह में आप वृषभारूढ नाम से प्रसिद्ध हैं। किंच त्रिपुरदाह के अवसर पर विष्णु ने वेदरूप अश्वों का वृषभरूप से हरण किया था जिससे तब भी आप परम्परया वृषभरूप विष्णु पर आरूढ हुए थे अतः भी वृषभारूढ हैं। और भी, आप सदा धर्म, ज्ञान, ऐश्वर्य और वैराग्य पर दृढ रहते हैं इसलिये भी देवगणों में प्रसिद्ध है कि आप वृषभारूढ हैं।

४१. **भस्मोद्धूलितविग्रहः** — हे नाथ ! अपने शरीर पर भस्म रमाकर आप शिवतत्त्व की जानकारी चाहने वालों के लिये आवश्यक शिरोव्रत की कर्त-व्यता बताते हैं और भूतेश नामक तीर्थ में आप इस नाम से प्रतिष्ठित हैं। अतः भस्मोद्धूलितविग्रह नाम वाले हैं।

४२. **सामप्रियः** — हे ईश ! चन्दन के स्पर्श-सी चित्तसुखदायिनी, अमृत बहाती मधुर वाणी का प्रयोग किये जाने पर या सामवेद गाये जाने पर या गीत गाये जाने पर आप अत्यन्त प्रसन्न होते हैं अतः आप सामप्रिये हैं।

४३. **स्वरमयः** — हे साम्ब ! षड्जादि व उदात्तादि स्वर वेदरूप शरीर वाले आपके ही अवयव हैं। आप व्यंजन रूप व आपकी शक्ति स्वरात्मिका है। ओङ्कार के अवयवों में मकार आदिरूप रुद्र, ईश्वर व शिव — सभी जिन आपकी विभूति हैं, वे आप स्वरमय हैं।

४४. **त्रयीमूर्तिः** — हे साम्ब ! आप सिर से गले तक ऋग्वेदरूप हैं। गले से नाभि तक यजुर्वेदरूप हैं और नाभि से नीचे सामवेदरूप हैं। इसी से आपका त्रयीमूर्ति नाम हो गया है।

४५. **अनीश्वरः** — हे भगवान् ! ईश्वरता की जो सीमा है वह आप सर्वेश्वर ही हैं। उन आपका कोई अन्य नियन्ता है नहीं । अतः आप अनीश्वर हैं।

४६. **सर्वज्ञः** — छत्तीसों तत्त्व आप में अध्यस्त होने से आप सर्वज्ञ हैं।

४७. **परमात्मा** — समस्त प्राणियों को अन्दर से शासित करने के कारण श्रुतिद्वारा आप अनेकत्र परमात्मा कहे गये हैं।

४८. **सोमसूर्याग्निलोचनः** — आपके सूर्यादि लोचन मन-वाणी से अतीत आपको विषय नहीं करते। स्वतः प्रकाशमान आपके कारण ये सूर्यादि उचित प्रकाशन करते हैं। अतः आप सोमसूर्याग्निलोचन हैं।

४९. **हविः** — जैसे सारे दूध के अन्दर घी होता है वैसे सभी प्राणियों के हृदय में आप हैं तथापि मन का मन्थन करने पर ही आप स्पष्ट पाये जाते हैं। होम में अर्पित सब कुछ आप ही हैं, इसलिये भी आप हवि हैं।

५०. **यज्ञमयः** — आपका एक चौथाई शरीर वेदरूप है। यूप आपकी दाढ है। आप अग्निरूप जिह्वा वाले और चयनरूप मुख वाले हैं। आप धर्मरूप रोम वाले हैं। स्रुवा आपकी नाक की नोक है। घी आपकी नाक है। दिन व रात आपकी दोनों आँखें हैं। तीन सवन आपका हाथ है। आप औद्गात्ररूप आँत वाले हैं। दक्षिणा आपका सीना है। मंत्ररूप नितम्ब वाले आप है। इस प्रकार यज्ञ के नाना साधनों से घटित आपका शरीर है अतः आप यज्ञमय हैं।

५१. **सोमः** — हे ईश ! आपकी आठ मूर्तियों में एक सोम नामक चन्द्रमा हैं, आप सोम नामक ज्योतिष्टोम याग हैं, आप उस याग की सोम नामक हविर्विशेष हैं, आप सोमशब्दित कुबेर हैं। हे शिव ! आप सोमेश्वर नाम से सौराष्ट्र में स्थित हैं व गंगा-यमुना के संगम पर भी विराजमान हैं, आप गौरी के साथ नित्य विहार करने वाले हैं। इन सब हेतुओं से आप सोम हैं।

५२. **पञ्चवक्त्रः** — हे सर्वेश्वर ! ब्रह्म, तत्त्व, इन्द्रिय, विषय, कला, भूत, सादाख्य और मूर्ति — इन प्रत्येक पंचकरूप आपके मुखों के अनादि होते हुए भी जो यह सुन्द व उपसुन्द को मारने के लिये बनायी श्रेष्ठ अप्सरा को देखने की इच्छा से उन मुखों का प्रादुर्भाव आपने कहा है वह उसकी आपके प्रति अत्यन्त भक्ति के कारण ही है। यों आप भक्तिपरवश हुए पाँच मुँह वाले हो गये।

५३. **सदाशिवः** — ब्रह्मादि ईश्वरान्त मूर्तियों की दृष्टि से जो सदाशिव मूर्ति है उसकी दृष्टि से भी जो निश्चय ही सदाशिव हैं उन आपकी कालगणना कहाँ सम्भव है ? अतः सदाशिव आपका औपचारिक नाम ही है ।

५४. **विश्वेश्वरः** — हे ईश ! केवल ज्ञानज्योति रूप आत्मा ही काशी है । अतः सब प्रपंचों से काशी अतीत है । फिर भी व्रह विश्वान्तर्गत है ऐसा व्यवहार होती है । क्योंकि आप वहाँ रहते हैं अतः परिच्छिन्न बुद्धि से आप काशी के अधीश्वर रूप से जाने-जाने पर भी वस्तुतः विश्वेश्वर हैं ।

५५. **वीरभद्रः** — श्री गौरी द्वारा वीर नामक आपका गण पुत्ररूप से स्वीकारा गया था और क्रोधाग्नि से हुए पसीने से आपने भद्र नामक गण उत्पन्न किया था, उन दोनों वाले आप वीरभद्र हैं । अथवा भद्रा के सम्बन्ध से वीर ही वीरभद्र है और उस वाले (उसके स्वामी) आप भी वीरभद्र हैं । राजपूः अर्थात् राजपुर क्षेत्र में वीरभद्रेश्वर रूप होने से भी आप वीरभद्र हैं ।

५६. **गणनाथः** — हे शिव ! एक, दो, तीन आदि संख्याओं के आप अधि-पति हैं । प्रमथ, तुषित, मय आदि गणों के आप अधिपति हैं, कैलासपुरी में इस नाम से प्रसिद्ध हुए रहते हैं अतः आप गणनाथ हैं ।

५७. **प्रजापतिः** — भूमि, अन्तरिक्ष व स्वर्ग में जो रुद्र नाम वाली हजारों प्रजाएँ हैं, उन्हें आप हजार-हजार कर उत्पन्न करते हैं इसलिये आप प्रजापति हैं । स्थाणु नाम वाले प्रजापति होने से भी प्रजापति हैं ।

५८. **हिरण्यरेता** — हे ईश ! आपके वीर्य के सम्बन्ध से सोना बनता है, अतः आप हिरण्यरेता हैं । अथवा आप अग्निरूप होने से हिरण्यरेता हैं । या जल में आपके द्वारा छोड़े वीर्य से स्वर्णमय ब्रह्माण्ड बना इससे आप हिरण्यरेता हैं ।

५९. **दुर्धर्षः** — रावण का सारा बल कैलासपर्वत पर तिनके के समान तुच्छ हो गया । रावण जैसे महाबली का यह हाल होने पर अन्य तो कौन आपका अभिभव करने वाला हो सकता है ? अतः किसी से अभिभूत न होने वाले आप दुर्धर्ष हैं ।

६०. **गिरीशः** — हे शम्भो ! अनन्त गुणों वाले तथा निर्दुष्ट पदघटित-वाक्य की रचना में सुतरां समर्थ होने से तथा पर्वतों के राजा होने से आप गिरीश माने गये हैं ।

६१. गिरिशः — हे नाथ ! अपना धनुष बनाने के लिए आप मेरु पर्वत को भी अपने सामने बहुत छोटा कर देते हैं, इसलिये आप गिरिश हैं तथा पर्वत पर सुख से रहते हैं इसलिये आप गिरिश हैं ।

६२. अनघः — हे नाथ ! हे त्रिलोकी के अधिनायक ! आपको कोई दुःख नहीं, आपका कोई पाप नहीं और आपको कोई व्यसन नहीं, अतः आप अनघ हैं ।

६३. भुजङ्गभूषणः — (हे कृपालो !) अन्यों का अनिष्ट करने में समर्थ दारुका-वनवासी मुनियों द्वारा भेजे साँपों को और गरुड से डरे साँपों को भी अपने शरीर पर धर लिया इससे आप भुजंगभूषण हैं ।

६४. भर्गः— जिनकी प्राप्ति होने से पापराशियाँ जल जाती हैं, वे आप गायत्री के प्रतिपाद्य हैं, अतः भर्ग हैं ।

६५. गिरिधन्वा — हे ईश ! वाणी के विषय में आप मरूभूमि की तरह हैं क्योंकि वचन आपका यत्किंचित् भी अभिधान नहीं कर पाते, अतः आप गिरिधन्वा हैं । अथवा विद्युन्माली आदि के पुरों का दहन करते समय आपके दिव्य रथ में निश्चित ही वेदात्मक तीव्र घोड़े थे, सूर्य व चन्द्र आपके रथ के पहिये थे, उपेन्द्र (विष्णु) स्वयं बाणरूप धारण किये हुए थे, मेरु पर्वत आपका धनुष बना और सर्पराज वासुकि मौर्वी (धनुष की रस्सी) बने । अतः (उस समय क्योंकि मेरु आपका धनुष था इसलिये) आप गिरिधन्वा हैं ।

६६. गिरिप्रियः — वैदिक स्तुत्यात्मक वाणी पर क्योंकि आपका प्रेमाधिक्य जगद्विश्रुत है और सब पर्वतों पर भी आप अधिक स्नेह रखते हैं इसलिये (केवल अर्थतः ही नहीं) नाम से भी आप गिरिप्रिय हैं ।

६७. कृत्तिवासा — हे शिव ! हे चन्द्रकलाशेखर ! वाराणसी में आपके भक्तों को पीड़ित करते गजेन्द्ररूप असुर को और दारुकवन में मुनियों द्वारा भेजे परपीडासमर्थ व्याघ्र को शूल से मारकर उनके दोनों चमड़ों को (खालों को) लपेटकर आप शोभित हो रहे हैं और एकाम्रेश्वरक्षेत्र में इस नाम से प्रसिद्ध भी है अतः आप कृत्तिवासा हैं ।

६८. पुरारातिः — आप पहले भासते हैं, यह जगत् आपके पीछे ही प्रकाशित होता है अतः आपका पुराराति होना संगत है । अथवा आप लोहमय आदि

पुरों के शत्रु हैं जिससे आप पुराराति हैं। या स्थूल, सूक्ष्म व कारण शरीर का आप नाश कर देते हैं इससे आपकी पुरारातिता अन्वर्थ है।

६९. **भगवान्** — पराक्रम, ज्ञान, वैराग्य, यश, श्री और जगत्पतित्व — भग शब्द से कहे ये छह गुण आप में रहते हैं, अतः श्रुतिवचनों द्वारा आप भगवान् कहे गये हैं।

७०. **प्रमथाधिपः** — हे ईश ! क्योंकि अवैदिकों का उन्मूलन करते हैं इसलिये आपके पार्षद प्रमथ माने जाते हैं। आप उन प्रमथों का सदा परिपालन करते हैं अतः भक्तों द्वारा आप प्रमथाधिप कहे जाते हैं।

७१. **मृत्युञ्जयः** — हे विभो ! करोड़ों ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र व ईश्वर जिस मृत्यु द्वारा क्षणभर में निगल लिये जाते हैं, आप उस मृत्यु के विषय नहीं हैं अतः अजन्मा आप मृत्युंजय हैं।

७२. **सूक्ष्मतनुः** — हे ईश ! आप आम्रातकक्षेत्र में ऐसी मूर्ति धारण कर प्रकट हुए हैं जिसे समझ पाना कठिन है अतः सूक्ष्मतनु हैं। तथा आप सूक्ष्म से भी तनु (= छोटे) हैं अतः सूक्ष्मतनु हैं।

७३. **जगद्व्यापी** — यह अनुभवसिद्ध है कि लोक में सब वस्तुओं में सत्ता, भान और प्रियरूपता अनुगत है, तथा सत्ता, भान और सुखात्मकता आपका स्वरूप है। अतः सत्तादि रूप से जगत् को व्याप्त करने वाले आप जगद्व्यापी हैं।

७४. **जगद्गुरूः** — हे दक्षिण की ओर मुँह किये परम शिव ! वटवृक्ष के समीप समस्त मुनियों को तथा पद्मसंभव आदि देवताओं को चिन्मुद्रा से आप अपने परम तेज का उपदेश देते हैं, अतः जगद्गुरू माने जाते हैं।

७५. **व्योमकेशः** — पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाशरूप महाभूतों में पूर्व में कहे भूत व्याप्य तथा उत्तरोत्तर कहे भूत व्यापक हैं, किन्तु आप तो व्योम से भी व्यापक हैं अतः व्योमकेश हैं। किञ्च विराट रूप आपके केश गगनात्मक हैं इसलिए भी आप व्योमकेश हैं। और गंगा की आधारभूत आपकी जटाएँ आकाश की तरह विस्तृत होने से भी आप व्योमकेश हैं।

७६. **महासेनजनकः** — कार्तिकेय ने पूछा— प्रणव का वास्तविक प्रतिपाद्य कौन है ? ब्रह्मा व विष्णु ने स्वयं को ही प्रणवप्रतिपाद्य बता दिया। उनके

इस मिथ्या अहङ्कार के कारण उन्हें परमशिव ने कारागार में बन्द कर दिया और यह उपदेश दिया कि अपरिमित आनन्दस्वरूप परम ज्योति परमात्मा ही ॐकार का वास्तविक प्रतिपाद्य है तथा हे स्कन्द वह आत्मा तू ही है क्योंकि वेद कहता हैं 'निश्चय ही पुत्र आत्मा है' (शतपथ १४.९.४.८.२६); यह तथ्य समझाने के बाद ब्रह्मा विष्णु को भी कारागृह से छोड़ दिया। इस पर कमलनयन विष्णु, ब्रह्मा व स्वपुत्रं स्कन्द द्वारा भगवान् की स्तुति की गयी। इस प्रकार भव की महासेनजनक यह संज्ञा अन्वर्थ है।

७७. **चारुविक्रमः** — हे परमशिव ! गज, जलन्धर, त्रिपुरवासी आदि जो असुर आपके द्वारा मारे गये, वे आपके उस कैलास धाम को प्राप्त हुए जहाँ से लौटना नहीं पड़ता अपनी ऐसी गति से वे सबको चमत्कृत करते हुए द्योतित करते हैं कि आप चारुविक्रम हैं।

७८. **रुद्रः** — ब्रह्मा के ललाट से बालक रूप से उत्पन्न हुए आप रोये थे अतः रुद्र हैं। अग्निरूप होने से भी आप रुद्र हैं कारण कि अग्नि के विषय में श्रुति ने कहा है वह रोया। क्योंकि वह रोया इसलिये उसकी रुद्रता है। या नीरोग कर देने से आप रुद्र हैं। अथवा प्रलय कर देने से ब्रह्मा आदि को रुलाते है, अतः आप रुद्र हैं।

७९. **भूतपतिः** — पृथ्वी, जल आदि में तथा जीवों में प्रवेश कर उन्हें नियन्त्रित करते हुए आप स्वयं नटन करते हैं इसलिये भूतपति हैं। अथवा संसार की रक्षा के लिए पिशाचसमूहों को नचाते हुए आप स्वयं नाचते हैं, इसलिये आप भूतपति है।

८०. **स्थाणुः** — द्युलोक व भूलोक पर आप निश्चल तथा स्थित हैं अतः स्थाणु हैं। स्वर्णमय आदि तीनों पुरों के एकत्र होने की प्रतीक्षा में आप बहुत समय स्थिरभाव से खड़े रहे अतः भी स्थाणु हैं। ज्योतिर्लिंग में भी निश्चल हुए आप ही स्थित थे इससे स्थाणु हैं। प्रलय काल में प्रचण्ड संहार वायुओं से भी विचलित न होने वाले आप ही स्थाणु हैं।

८१. **अहिर्बुध्न्यः** — ब्रह्माण्ड के नीचे मूलभाव को प्राप्त पाताल में भली प्रकार से स्थित सहस्र फणों वाला शेषनाग समुद्रों, द्वीपों व पर्वतों समेत वसुधा को ढो रहा है। उसके फणों से विषप्रचुर शरीर वाले कालसङ्कर्षण नामक रुद्ररूप से उत्पन्न होकर समस्त संसार को आप जो जलाते हैं, वे आप अहिर्बुध्न्य नाम वाले हैं।

८२. **दिगम्बरः** — हे महेश ! महर्षियों व सिद्धों से उपाश्रित दारुकावन में उन ऋषियों की पतिव्रता पत्नियों की परीक्षा करने की दृष्टि से आप कामदेव से भी अधिक सुन्दर जिस मनोहारि शरीर को धारण कर उनके आश्रमों पर भिक्षा लेने पहुँचे, आपके उस रूप का नाम है— दिगम्बर ।

८३. **अष्टमूर्तिः** — पृथ्वी रूप महाभूत के आप शर्व इस नाम से अभिमानी हैं । भव नाम से जलतत्त्व के अभिमानी हैं । रुद्र नाम से अग्नि के, उग्र नाम से वायु के, और भीम नाम से आकाश के आप अभिमानी हैं । सूर्य के अभिमानी ईशान नाम से तथा चन्द्रमा के अभिमानी महादेव नाम से हैं । क्षेत्रज्ञों के या दीक्षितों के अभिमानी आप पशुपति नाम से है । यों सारे संसार को व्याप्त कर विद्यमान् आप अष्टमूर्ति हैं ।

८४. **अनेकात्मा** — ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी है वह सब रुद्र ही है अतः रुद्र अनेकात्मा हैं । और शिव की संख्यादृष्ट्या सीमा नहीं होने से वे अनेकात्मा नाम से प्रसिद्ध हैं ।

८५. **सात्त्विकः** — हे परम शिव ! प्राणिवर्ग, सत्ता और सत्तगुण आप में रहते हैं अतएव वे आप से प्रवर्तित होते हैं अतः आप सात्त्विक हैं । आप भी उनमें रहते हैं और सत्त्वरूप शरीर वाले हैं इससे भी आप सात्त्विक माने गये हैं ।

८६. **शुद्धविग्रहः** — हे शिव ! जैसे घनीभूत घी में घीसे अतिरिक्त कुछ नहीं ऐसे आप केवल सत्त्वरूप शरीर वाले हैं । आपका शरीर रजोगुण व तमोगुण से थोड़ा भी कलुषित नहीं है । तथा युद्ध में आप कभी छल-बल का प्रयोग नहीं करते और भक्तों के मलों को हर लेते हैं । इस सभी दृष्टियों से आप शुद्धविग्रह हैं ।

८७. **शाश्वतः** — जगत् की उत्पत्ति से पूर्व काल में, सारे संसार के संहार के उत्तर काल में और जगत् के विद्यमान रहते काल में आप हैं ही, अतः शाश्वत हैं ।

८८. **खण्डपरशुः** — गजासुर का वध करने में आपके फरसे टूट गये थे, तब से सब देवताओं द्वारा आप खण्डपरशु कहे जाते हैं ।

८९. **अजः** — हे शिव ! आपका जन्म नहीं होता और आपकी कृपा से आपके भक्त का भी जन्म नहीं होता, अतः आप अज हैं ।

९०. **पाशविमोचनः** — हे शिव ! अपने चरणों की सेवा को निमित्त कर आप पशुसमूह को अभिमान रूप पाश से, गुण रूप पाश से, पाँच पर्व वाली अविद्यारूप

पाश से, दस इन्द्रियाँ रूप पाशों से, तेईस व चौबीस पाशों से छुड़ा देते हैं इससे आप पाशविमोचन हैं ।

९१. **मृडः** — हे आर्यापति ! शुभ-हितकारी यज्ञ पूर्ण होने पर पूर्णाहुति से आपके तृप्त हो जाने पर यजमानों को व ध्यानकर्ताओं को आप ही सुखी बनाते हैं अतः आप मृड हैं ।

९२. **पशुपतिः** — हे नाथ ! तन्त्रों में प्रसिद्ध है कि पशु, पाश और पति ये तीनों आपका ही स्वरूप हैं अतः आप पशुपति हैं । आप जीवों को नियमित रखते हैं और स्तुत होकर उन्हें मुक्त भी कर देते हैं इसलिये पशुपति हैं । ग्राम्य और वन्य पशुओं पर शासकत्व स्वयं में रखने से आप पशुपति हैं । नेपालपीठ में इस रूप से आप भक्तों को आनन्दित करते हैं अतः पशुपति हैं ।

९३. **देवः** — हे शशांकशेखर ! देदीप्यमान, आनन्दरूप व समस्त व्यवहार के आश्रय होने से आप देव हैं । देव-जाति में आप ही अवतरित हैं अतः आप देव है । संसार के अधिपति होने से आप देव हैं ।

९४. **महादेवः** — देवताओं के तथा विष्णु आदि के आप नमनीय व स्तोतव्य देव हैं अतः (देवताओं से महान् होने के कारण) महादेव हैं ।

९५. **अव्ययः** — हे परमशिव ! आप न उत्पन्न होते हैं, न बदलते हैं, न बढ़ते हैं, न क्षीण होते हैं, न बिगड़ते हैं, और न नष्ट होते हैं, अतः आप अव्यय हैं और आप क्षमा आदि दस अव्ययों से अलंकृत हैं । इससे भी आप अव्यय हैं ।

९६. **हरिः** — हे परमशिव ! आपके नाम का संकीर्तन कलिदोष से युक्त चित्त वालों को पवित्र कर देता हैं । हरिश्चन्द्र नामक क्षेत्र में हरीश्वर नाम से आप प्रतिष्ठित भी हैं । (वहाँ पूजित होकर व अन्यत्र भी कहीं संकीर्तित होकर) जो आप पापों का हरण करते हैं, वे आप हरि हैं ।

९७. **पूषदन्तभित्** — हे शिव ! (दक्ष के) यज्ञ में पूषा को दाँत दिखाकर शिव पर हँसता देख आपने उसके दाँत तोड़ दिये और केवल पिसे हुए यज्ञ-भाग का अधिकारी बना दिया ।

९८. **अव्यग्रः** — हे शिव ! रावण द्वारा कैलास पर्वत हिलाये जाते समय भगवती को देखते हुए आप अविचल भाव से व्यवहार करते रहे अतः अव्यग्र हैं । प्रलय में ब्रह्माण्डों के जलते समय भी आपको कोई विक्षेप नहीं होता, इसलिये

अव्यग्र हैं। अनेक युद्धों के समय व कालकूटभक्षण आदि अन्य अनेक दुष्कर कार्यों के समय आप निर्विकार रहते हैं जिससे आप अव्यग्र हैं। आप में सदा संतोष की पूर्णता है अतः अव्यग्र हैं।

९९. **दक्षाध्वरहरः** — हे शिव ! पहले दक्ष नामक एक देवता आपका ससुर था, बाद में होने वाला एक दक्ष नामक मनुष्य था, जो प्रचेता का पुत्र था और विटपिकन्या के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। आश्चर्य है कि समस्त यज्ञों के फलदाता होते हुए भी आपने उन दोनों के यज्ञों को नष्ट कर दिया। (दोनों दक्षों के यज्ञों का नाश करने वाले होने से) आप दक्षाध्वरहर हैं।

१००. **हरः** — हे परमशिव ! स्थावर-जंगम समस्त जगत् को 'भव' इस नाम से कहे गये आप उत्पन्न करते हैं। 'मृड' शब्द से कथनीय आप इसे स्थिर भी रखते हैं। अन्तिम अर्थात् तीसरे गुण का—तमोगुण का—धारण कर समस्त उक्त जगत् का प्रहरण करते हैं, अतः 'हर' भी आप ही हैं।

१०१. **भगनेत्रभिद्** — विष्णु, ब्रह्मा आदि अखिल देवताओं से व्याप्त यज्ञशाला में आये देवासुरनाशक भद्रपति वीर को क्रोधावेश से लाल आँखों वाला हुआ भग-देव बार-बार देखने लगा। अतः उस वीर ने भग की दोनों आँखें बलपूर्वक फोड़ दी, इससे (वीर रूपधारी आप) भगनेत्रभिद् हैं।

१०२. **अव्यक्तः** — जिसे सांख्यवादी 'मूलप्रकृति' ऐसा करते हैं, और जिसे पाराशर्य मुनि — व्यास जी — 'चित्त' (आत्मा) ऐसा कहते हैं, वह तत्त्व आप हैं। अखिल प्रपंच की समष्टि शिव है इसलिये, अक्षर शिव है इसलिये, और पृथ्वी में जो व्यक्त नहीं होता है ऐसा बाणनामक लिंग शिव है, इसलिए वे अव्यक्त हैं।

१०३. **सहस्राक्षः** — हे शिव ! जो आपका अनगिनत हाथ, पैर, सिर, दाढ़ व पेटों वाला भयानक और आश्चर्यजनक रूप है, तथा जो रूप इकट्ठे ही विभिन्न स्थानों पर सृष्टि, स्थिति और संहार कर लेता है, एवं सुवर्णाक्ष क्षेत्र में प्रतिष्ठित लिंग में जो रूप प्रसिद्ध है (उस 'सहस्राक्षेश्वर' रूप वाले भी आप सहस्राक्ष हैं,) एवं जो रूप श्रुति आदि में नानाविध कर्मेन्द्रियों से युक्त बताया गया है, वे सब आपका ही रूप हैं, अतः सहस्राक्ष हैं।

१०४. **सहस्रपात्** — हें कामनाशक शंकर ! संसार के रक्षणार्थ धारण की हुई आपकी आठ मूर्तियों में सूर्यमूर्ति आठवीं है (उस मूर्ति वाले आप सहस्रपात है),

गिनती न की जा सके इतने चरणों वाले विश्वरूप का धारण करने वाले आप (होने से आप सहस्रपात है), श्रुति में भी आप इस नाम से कहे गये हैं, अतः आप सहस्रपात् हैं ।

१०५. **अपवर्गप्रदः** — प्रतीकोपासना, अहंग्रहोपासना, सेवक भाव से उपासना और अपने को विषय करने वाली विधियों का पालन रूप क्रमोपासना से क्रमशः शिवसालोक्य, शिवसायुज्य, शिवसारूप्य और शिवसामीप्य रूप मोक्ष प्राप्त होते हैं । आत्मानुभव से अमृततारूप कैवल्यमोक्ष होता है । सारे अपवर्ग फल परमशिव से प्राप्त होते हैं अतः वे अपवर्गप्रद स्वीकारे गये हैं ।

१०६. **अनन्तः** — हे विभो ! 'यहाँ', 'अब' या 'यह' इस तरह जो देश, काल या वस्तु की सीमा में बँधा नहीं वह ब्रह्म आप हैं, अतः अनन्त हैं । जिसे विषय कर वाणी प्रवृत्त नहीं होती, वह ब्रह्म आप हैं, अतः अनन्त हैं । अथवा आपके गुणों की और विभूतियों की सीमा नहीं, अतः आप अनन्त हैं । पृथ्वी का धारण करने वाले शेष भी आप ही हैं, इसलिये भी अनन्त हैं ।

१०७. **तारकः** — हे महादेव ! क्योंकि आपके द्वारा आपके चरण-कमलों का भजन करते हुए लोग भवसागर से तरा दिये गये इसलिये आप तारक हैं । तार नामक अक्षर ॐकार आपका स्वरूप होने से भी आप तारक हैं । काशी में मरे द्विजों को भी प्रणव का उपदेश देते हैं अतः आप तारक हैं । श्रुतियों में बताये आप अपने नाम के अनुरूप स्वरूप वाले तारक हैं ।

१०८. **परमेश्वरः** — संसार में प्रचुरतया उपलब्ध गाँव आदि के राजा भी सावधिक ईश्वर हैं और वे भी केवल उन्हीं के पोषण में तत्पर रहते हैं जो उनके आश्रित हैं । इसी तरह देवता भी सावधिक ऐश्वर्य वाले और स्वाश्रितों के ही पोषक हैं । आप तो संसार में प्रसिद्ध सभी शासकों के शासक है और सभी की अपने पर आश्रितों की, उन पर आश्रितों की व आगे उन पर आश्रितों की भी रक्षा करते हैं । अतः ईश्वर की आप चरमसीमा हैं । इसलिए आप ही परमेश्वर हैं ।

मुद्रक :—

तारा प्रिंटिंग वर्क्स
कमच्छा, वाराणसी